सिरि कुन्दकुन्दाइरिय विरइयं

रयणसार

संपादक

आचार्य वसुनन्दी मुनि

सिरि कुन्दकुन्दाइरिय विरइयं

रयणसार

सम्पादक

आचार्य वसुनन्दी मुनि

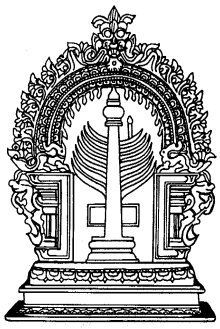

प्रस्तुतिः

श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजी.)

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ सन् 2001
द्वितीय - 1100 प्रतियाँ सन् 2007
तृतीय - 1000 प्रतियाँ सन् 2012
चतुर्थ - 1000 प्रतियाँ सन् 2019
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

ग्रंथ	:	**रयणसार**
ग्रंथ प्रणेता	:	आचार्य कुन्दकुन्द
पावन आशीष	:	प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक	:	आचार्य वसुनन्दी मुनि
प्रकाशक	:	श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य	:	स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	:	श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बौलखेड़ा कामां (भरतपुर) राज.
मुद्रक	:	चन्द्रा कॉपी हाउस हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ०प्र०) मो.: 9412260879 e-mail : chandra.agra@gmail.com

सम्पादकीय

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मेचित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय।।
वी0 भ0 ।।7।।

धर्म संसार के समस्त प्राणियों को सुखकारक व हितकारक है, प्राज्ञ पुरुषों द्वारा वह यथार्थ धर्म ही सेवनीय है, धर्म के द्वारा ही शिव सुख को प्राप्त किया जाता है, ऐसे पवित्र धर्म को मेरा प्रणाम हो, धर्म के समान संसार में अन्य कोई सच्चा मित्र नहीं है, (क्यों कि धर्म ही संसार में प्राणी मात्र का रक्षक, विश्वस्त, शुभ प्रेरणादायी बन्धु है।) उस धर्म का मूल दया है, उसी जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म में मैं मन को प्रतिदिन लगाता हूँ। हे धर्म ! सदैव मेरा पालन/रक्षण करो।

उक्त पंक्तियाँ इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम (भगवन) द्वारा मुखरित कही जाती हैं, इस जीवन मात्र के कल्याणदायी धर्म के आगम में दो भेद कहे हैं— (1) श्रमण धर्म, (2) श्रावक धर्म। ये दोनों धर्म जैन दर्शन के दो सुदृढ़ स्तम्भ हैं, धर्म सरिता के अनुकूल तट हैं, धर्मरूपी रथ के दो पहिए हैं, आत्मप्रकाशदायी धर्म के दो तार (वायर-अर्थ व करंट के) हैं जिनके संयोग से जिन धर्म का लोकव्यापी प्रकाश संभव है, ये दोनों धर्म रूपी सिक्के के दो पहलू के समान या पक्षी के दो पंखों के समान या मानव के दो पंखों के समान अथवा जीवन के ज्ञान दर्शन उपयोग के समान अथवा द्रव्य प्राण व भाव प्राण के समान है, एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता, कदाचित् रह भी जाये तो वह निष्फल है।

इन दोनों धर्मों के सम्बन्ध में अथवा स्वरूप विवेचन करते हुए आचार्यों ने अनेकों ग्रंथों की रचना की है यथा श्रमण धर्म का प्रतिपादन करने वाले- मूलाचार,

मूलाराधना (भगवती आराधना) मूलाचार प्रदीप, आचारसार, अनगार धर्मामृत, प्रवचनसार, नियमसार, समयसार आदि एवं श्रावक/उपासक धर्म के प्रतिपादक-रत्नकरण्डक श्रावकाचार, उमास्वामी श्रावकाचार, रत्नमाला, अमितगति श्रावकाचार, प्रभावकधर्म प्रकाश, चारित्रसार, सोमदेव स्वामी का श्रावकाचार, भाव संग्रह में वर्णित श्रावकाचार, पद्मनंदि श्रावकाचार, गुणभद्र का श्रावकाचार इत्यादि अनेकों दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा रचित ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध हैं।

जिनमें श्रमण धर्म (28 मूलगुण, 34 उत्तर, 10 धर्म, 18,000 शील के भेद, चौरासी लाख उत्तर गुण (विशेष) वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। श्रावक का धर्म अष्ट मूल गुण पालन करना, सप्त व्यसन के त्याग, पांच प्रकार के अभक्ष्यों का त्याग, षडावश्यक कर्त्तव्यों का पालन करना, बारह व्रतों को धारण करना एवं ग्यारह प्रतिमाओं का पालन (श्रावकों का धर्म) जिनेन्द्र भगवान ने कहा है—

आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी द्वारा विरचित रयणसार एक ऐसा अनुपम ग्रंथ है जिसमें श्रावक व श्रमण दोनों के धर्मों का संक्षेप में अत्यंत उत्तम तरीके से कथन किया है। प्रथमतः श्रावक धर्म की महत्ता बताते हुए उसे धर्म की ओर प्रेरित किया है, उन्होंने दान और पूजा को श्रावक का अनिवार्य कर्त्तव्य (धर्म) कहा है, जो श्रावक इन कर्त्तव्यों से रहित है वह श्रावक ही नहीं है। उन्होंने श्रावकों के लिए निर्दिष्ट षड्वश्यक कर्त्तव्यों में से दो कर्त्तव्य तो अनिवार्य करने ही चाहिए यदि छः कर्त्तव्य में दो का भी पालन नहीं करता तो वह श्रावक कैसे हो सकता है ? श्रावक अपने छः आवश्यक कर्त्तव्यों (जिनका उसे नाम तक याद नहीं) में से एकाध कर्त्तव्य का पालन वर्ष में कभी-कभार करता है अथवा नहीं भी करता है, वह श्रावक ही आज मुनि के 6 आवश्यक कर्त्तव्यों में वंचित कदाचित् अतिचार लग जाये तो वह ऊंगली उठाने लगता है, उसकी (श्रमणों की) निंदा करने लग जाता है, जिन धर्म की बदनामी/निंदा स्वयं करता है। उसकी यह चेष्टा आगम विरुद्ध तो है ही, साथ-ही उसके लिए दुर्गति हेतु व अनंत संसार, व दुःखों की कारण भी है, मुनिराजों (श्रमणों) का अनिवार्य कर्त्तव्य ध्यान और अध्ययन कहा है।

प्रारंभिक गाथाओं में सम्यकदर्शन का स्वरूप, गुण, दोष, महत्व, उत्पत्ति सुरक्षा व संवर्द्धन के उपाय, मिथ्यात्व का दुष्परिणाम, सुपात्र दान का महत्व, सुफल

भोग भूमि, चक्रवर्ती, राजाधिराज, तीर्थंकर पद की प्राप्ति, निर्माल्य का स्वरूप, सेवन करने वालों की निंदा, दुर्गति का हेतु, दु:खों का आगार होता है, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि की पहचान, पंचमकाल में यथार्थ धर्मात्मा/सम्यग्दृष्टियों की न्यूनता, शुभाशुभ बंध के हेतु, वैराग्य हीन चारित्र व्यर्थ है, इत्यादि कथन के साथ ही मुनियों के शिथिलाचार को दूर करने हेतु, बहिरात्मा, अन्तरात्मा के स्वरूप का कथन, साधु की आहारचर्या, कैसी हो ? आहार ग्रहण के हेतु, शल्य, गारव, दण्ड, रत्नत्रय, योगत्रय का स्वरूप, बंध, मोक्ष का उपाय, द्रव्य-भावलिंग का स्वरूप, ज्ञान की आवश्यकता, ध्यान का महत्व, श्रावक की त्रेपन क्रियाऐं, सम्यक्त्व का विशेष महत्व बताते हुए रत्नत्रय के सारभूत अवस्था का कथन किया है, वास्तव में यह ग्रंथ रत्नों का सार स्वरूप ही है आचार्य भगवन् श्री कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहीं बतासे में रखकर (मधुर शब्दों में), कहीं ताड़ना के माध्यम से धर्मामृत रूपी औषधि को सेवन कराने का प्रयास किया है।

इस अनुपम ग्रंथ राज के प्रकाशन में व मुद्रण में सहयोगी सभी साधर्मी बन्धु जो धर्मशास्त्र के प्रकाशन में पुरुषार्थ रत हैं वे सभी भी साधुवाद के पात्र हैं, उन सभी को स्वात्म कल्याण हेतु शुभाशीष-

अलमति विस्तरेण

जिनचरणाम्बुज चंचरीक

कश्चिदल्पज्ञ श्रमण:

आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी

– आचार्य वसुनन्दी मुनि

जैन धर्म अनादि-निधन है, क्योंकि यह वस्तु के स्वभाव का कथन करने वाला है। वस्तु (द्रव्य) व उसके स्वभाव (गुण, पर्याय) अनादिकाल से हैं, एवं अनंतकाल तक रहेंगे। अतएव जैन धर्म भी अनादि-निधन है, जिनेन्द्र भगवान (सर्वज्ञ सर्वदर्शी, वीतरागी एवं हितोपदेशी) द्वारा कथित होने से इसे जिनधर्म/अर्हंत धर्म या जैन धर्म के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस धर्म (सत्य धर्म) का कोई संस्थापन नहीं होता, प्रवर्त्तक/उपदिष्टा हो सकते हैं, होते हैं/होते रहेंगे। अभी तक अनन्तानन्त तीर्थंकर (जिनधर्म प्रवर्त्तक) हो चुके आगे भी अनन्तानंत काल तक होते रहेंगे।

इस अवसर्पिणी काल में जैन धर्म के प्रथम उपदिष्ठा/प्रवर्त्तक आदिनाथ तीर्थंकर (आदि ब्रह्म ऋषभदेव) एवं इस काल के अंतिम धर्म प्रवर्त्तक, धर्म साम्राज्य नामक भगवान महावीर स्वामी हुए (जैन दर्शन में तीर्थंकर प्रवृत्ति नामक शुभ नामकर्म है के धारक एवं धर्म प्रवर्त्तक व उपदिष्ठा जो कि पंचकल्याणक आदि वैभव दो सम्पन्न हों उन्हें तीर्थंकर कहते हैं) उनके निर्वाण के उपरांत इन्द्रभूति गौतमादि गणधर एवं अन्यान्य भी केवली, श्रुत केवली, श्रुतांशधर, पूर्वधर प्रख्यात मुनि हुए।

श्रमण संस्कृति की इस निर्मल, सतत् प्रवाही धर्म सरिता रूपी श्रंखला में भागीरथी परम पुरुषार्थी देदीप्यमान नक्षत्रों के मध्य शीतल उद्योतनकरा, संताप हारक निर्मलेन्द्र एवं मुनि रूपी पर्वतों में सुमेरूवत शोभा को धारण करने वाले आचार्य भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी हुए। दिगम्बर जैन आम्नाय में जिनका नाम वीर प्रभु व उनके अद्वितीय गणधर इन्द्रभूति गौतम के बाद अत्यन्त श्रद्धा व भक्ति के साथ लिया जाता है। आप कलिकाल सर्वज्ञ या गणधर परमेष्ठी के समान प्रामाणिकता व आदर को प्राप्त हुए हैं, आप अत्यन्त वीतरागी, अध्यात्म वृत्ति के परम निस्पृही संत थे, आप अध्यात्म जगत में इतने गहरे में उतर चुके थे कि आज तक कोई उन गहराईयों को नहीं छू सका। आपके द्वारा प्रतिपादित, जिनोपदिष्टानसारी

व्याख्यान, का एक-एक शब्द इतना गूढ़ रहस्य युक्त है, जिसकी कि गहनता को स्पर्श कर पाना आज के तुच्छ बुद्धि धारी, अल्पज्ञ मानव के लिए असंभव नहीं तो दुसाध्य अवश्य ही है।

अध्यात्म प्रधानी होते हुए भी आप सर्व विषयों के पारगामी थे, प्राय: हर विषय के सम्बन्ध में आपने अपने स्वतंत्र बहु जन हिताय, बहु सुखाय ग्रंथ रचे। आपके ग्रंथों में सिद्धान्त, अध्यात्म नीतिशास्त्र, न्याय, व्याकरण, वैराग्य वर्धक अनुप्रेक्षा श्रावकाचार व मूलाचारादि आगम ग्रंथ के भी दर्शन होते हैं। आपने करणानुयोग के मूलभूत व सर्वप्रथम लिपि बद्ध ग्रंथ षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर 12,000 (बारह हजार) श्लोक प्रमाण ''परिकर्म'' नाम की टीका (प्राकृत/संस्कृत) भी लिखी थी, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है इसके अतिरिक्त आपने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार, पंचास्तिकाय, दंसण पाहुड, सुत पाहुड, चरित्त पाहुड, वोह पाहुड, भाव पाहुड, मोक्ख पाहुड, लिंग पाहुड, शील पाहुड आदि 84 पाहुडों की रचना की। पाहुड व सार पर्यावाची नाम हैं, इसके अतिरिक्त प्राकृति भक्ति संग हो, व कुरल काव्य ग्रंथ भी आपके द्वारा रचित माने जाते हैं।

आपके लौकिक (गृहस्थ) जीवन के सम्बन्ध में निम्नांकित परिचय प्राप्त होता है-आप दक्षिण देश के मलय प्रान्त में हेम ग्राम (पोन्नूर गाँव) के द्रविड़ संघ अधिपति थे, इसी के निकट नीलगिरि पर्वत व कुण्ड-कुन्द ग्राम है, इसी ग्राम के निवासी होने से आपका कुन्द-कुन्द नाम प्रख्यात हुआ, संभावित आपका दीक्षा का नाम पद्मनंदि था, एलाचार्य की पदवी से विभूषित होने के कारण अथवा विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकर सीमंधर तीर्थंकर (स्वयंभू भगवान) के समवशरण में 500 धनुष की शरीरावगाहना वाले पुरुषों के मध्य 31/2 हाथ की अवगाहना वाले से चीटीवत् हाथ में उठाकर तथा चक्रवर्ती द्वारा आपके बारे में सीमंधर तीर्थंकर (स्वयंभू भगवान) से या गणधर परमेष्ठी से जानकारी प्राप्त कर चक्रवर्ती ने आपको नमस्कार किया एवं इलाकार होने से चक्रवर्ती में आपको एलाचार्य नाम से सम्मानित किया। समवशरण से देव विमान वापिस लौटते समय जंगल में आपकी पिच्छी गिर जाने से आपने गृद्ध पंखों से निर्मित पिच्छी का उपयोग किया जिससे आप गृद्धपिच्छाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। सदैव (अकाल व सकाल का भेद किये

बिना ही) स्वाध्याय में संलग्न रहने से आपकी ग्रीवा कुछ वक्र हो जाने से आप वक्रग्रीवाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। दोनों मूलाचारों में कुछ गाथाओं में कुछ भिन्नता होने से शेष सम्पूर्ण मूलाचार में पूर्ण समानता होने से एवं नाम कुन्द-कुन्दाचार्य व वट्टकेराचार्य अंकित होने से आपका नाम वट्टकेराचार्य भी माना जाता है। प्राज्ञ पुरुषों ने कुरल काव्य को आपके द्वारा रचित मानने से आपका नाम तिरुवलुवर (जो कि तमिल भाषा में उच्चरित आपका मूलनाम हो सकता है) स्वीकार किया है। इत्यादि सप्त नाम आपके श्री नाम को ही सूचित करने वाले माने हैं।

गिरनार पर्वत पर श्वेताम्बर व दिगम्बरों के विवाद में पाषाण की मूर्ति सरस्वती देवी से आपने बलात् यह बुलवाया कि 'आदि दिगम्बर.....।' दिगम्बर धर्म अनादि से है या श्वेताम्बर धर्म के पूर्व दिगम्बर धर्म था इस घटना क्रमानुसार आपके द्वारा संचालित गण का नाम भी बलात्कार गण कहा जाता है। आपके बारे में प्राप्त अनेकों प्रमाणों से यह भी सिद्ध है कि आपको चारण ऋद्धि प्राप्त थी, जिससे आप जमीन पर न चलकर चार अंगुल ऊपर आकाश में गमन करते थे। आपका जन्म कुछेक विद्वान द्वितीय व कुछेक ईसा0 पूर्व में मानते हैं। आपका दीक्षा काल शालिवाहन सं. (श. सं.) 49 से 101 अथवा ई0 सं. 127 से 179 माना जाता है। प्राज्ञ पुरुषों द्वारा की गई आगम शास्त्र, पट्टावलियों एवं शिलालेखों के आधार के अनुसार आपके गुरु का नाम जिनचंद्र व स्वामिकुमार नंदि प्राप्त होता है। किन्तु आपने अपने में भद्रबाहु स्वामी को भी अपना गुरु स्वीकार किया है। संभवतः जिनचन्द्र दीक्षा गुरु व स्वामिकुमार नंदि शिक्षा हों। ऐसे परम पूज्य आचार्य भगवन कुन्द-कुन्द देवादि निर्मलाचरण के धारक, विषय कषाय आरंभ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान तप में निमग्न, जिनधर्म प्रभावक, मोक्षमार्ग के यथार्थ प्रवर्त्तक आचार्य भगवंतों के चरणों में त्रिकाल नमोस्तु.....।

जिन चरणाम्बुज चंचरीक
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः

सिरिकुंदकुंदाइरिय-पणीदं

रयणसार

मंगलाचरण

णमिऊण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोंच्छामि रयणसारं, सायारणयार-धम्मीणं।।१।।

सान्वय अर्थ-परमप्पाणं-परमात्मा, **वड्ढमाणं**-वर्धमान, **जिणं**-जिनेन्द्र देव को, **तिसुद्धेण**-मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक, **णमिऊण**-नमस्कार करके, **सायारणयारधम्मीणं**-सागार (गृहस्थ) और अनगार (साधु) धर्म वालों का व्याख्यान करने वाले, **रयणसारं**-'रयणसार' नामक ग्रन्थ को, **वोंच्छामि**-कहता हूँ।

अर्थ-मैं परमात्मा (तीर्थंकर) वर्धमान जिनेन्द्र देव को मन-वचन-काय की त्रिशुद्धि-पूर्वक नमस्कार करके सागार (गृहस्थ) और अनगार (साधु) धर्म का व्याख्यान करने वाला 'रयणसार' कहता हूँ/की रचना करता हूँ।

सम्यग्दृष्टि की पहचान

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहट्ठियं गणहरेहि वित्थरियं।
पुव्वायरियक्कमजं, तं बोल्लई जो हु सद्दिट्ठी।।२।।

सान्वय अर्थ-जो-जो, **हु**-वस्तुतः/निश्चय से, **सद्दिट्ठी**-सम्यग्दृष्टि है-वह, **पुव्वं**-पूर्वकाल में, **जिणेहि**-जिनेन्द्र देव ने जो, **भणिदं**-कहा, **गणहरेहि**-गणधरों ने, **जहट्ठियं**-उसी यथावस्थित वस्तुस्वरूप को, **वित्थरियं**-विस्तृत किया (विस्ताररूप से बताया) और जो, **पुव्वायरियक्कमजं**-पूर्वाचार्यों के क्रम से/परम्परा से प्राप्त हुआ, **तं**-उसी को, **बोल्लई**-कहता है।

अर्थ–जो निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, वह पूर्वकाल में जिनेन्द्र देवों ने जो कहा, गणधरों ने जिस यथावस्थित वस्तुस्वरूप को विस्ताररूप से बताया और पूर्वाचार्यों की परम्परा से जो प्राप्त हुआ, उसी को कहता है अन्यथा नहीं।

मिथ्यादृष्टि की पहचान

मदि-सुदणाण-बलेण दु, सच्छंदं बोॅल्लई जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होइ कुदिट्ठी, ण होइ जिणमग्ग-लग्ग-रवो।।३।।

सान्वय अर्थ–जो–जो व्यक्ति, **मदि–सुदणाण–बलेण दु**–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से, **सच्छंदं**–स्वच्छन्द अर्थात् मन:कल्पित, **बोॅल्लई**–बोलता है, **सो**–वह व्यक्ति, **कुदिट्ठी**–मिथ्यादृष्टि, **होइ**–होता है–वह, **जिणमग्ग–लग्ग–रवो**–जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति का वचन, **ण**–नहीं, **होइ**–है।

अर्थ–जो व्यक्ति मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छन्द (मन:कल्पित) बोलता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसका वचन जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति के योग्य वचन नहीं है।

सम्यग्दर्शन के भेद

सम्मत्तरयणसारं, मोॅक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छय-ववहार-सरूवदो भेयं।।४।।

सान्वय अर्थ–सम्मत्तरयणसारं–सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है–वह, **मोंक्ख–महारुक्खमूलं**–मोक्षरूपी महान् वृक्ष का मूल है, **इदि**–ऐसा, **भणियं**–कहा गया है, **तं**–वह, **णिच्छय–ववहार–सरूवदो**–निश्चय और व्यवहाररूप से, **भेयं**–दो भेदवाला, **जाणिज्जइ**–जाना जाता है।

अर्थ–सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) रत्न ही सारभूत है। वह मोक्षरूपी महान् वृक्ष का मूल है, ऐसा कहा गया है। वह निश्चय और व्यवहाररूप से (दो) भेदों वाला जाना जाता है। (उसके निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन ये दो भेद हैं)।

सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

भय-वसण-मल-विवज्जिय संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णो।
अट्ठ-गुणंग-समग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरु-भत्तो।।५।।

सान्वय अर्थ–दंसणसुद्धो–निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक, **हु**–निश्चय ही, **भय–वसण–मल–विवज्जिद**–भय, व्यसन और मलों से रहित होता है, **संसार–सरीर–भोग–णिव्विण्णो**–संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है, **अट्ठ–गुणंग–समग्गो**–अष्टांग गुणों से युक्त होता है और, **पंचगुरुभत्तो**–पंच गुरु–परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ–निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक निश्चय ही (सप्त) भय, (सप्त) व्यसन और (पच्चीस) मलों (दोषों) से रहित, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त, अष्टांग (**निःशंकितादि** गुणों) से युक्त और पंच गुरु **(पंचपरमेष्ठी)** का भक्त होता है।

सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता है

णिय-सुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पा वत्थ-वज्जिओ णाणी।
जिण-मुणि-धम्मं मण्णदि,गद-दुक्खो होदि सद्दिट्ठी।।६।।

सान्वय अर्थ–णिय–सुद्धप्पणुरत्तो–निज शुद्ध–आत्मा में अनुरक्त रहता है, **बहिरप्पा वत्थ–वज्जिओ**–बहिरात्मा की दशा से रहित होता है, **णाणी**–आत्मज्ञानी होता है, **जिण–मुणि–धम्मं**–जिनेन्द्रदेव, मुनि और धर्म को, **मण्णदि**–मानता है–ऐसा, **सद्दिट्ठी**–सम्यग्दृष्टि, **गददुक्खो**–दुःखों से रहित, **होदि**–होता है।

अर्थ–(जो) निज शुद्ध–आत्मा में अनुरक्त (रहता है), बहिरात्मा की दशा से रहित (पराङ्मुख) होता है, आत्मज्ञानी (होता है और) जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रंथ मुनि और धर्म को मानता है–ऐसा सम्यग्दृष्टि दुःखों से रहित होता है।

सम्यग्दृष्टि चवालीस (४४) दोषों से रहित होता है

मय-मूढमणायदणं, संकाइ-वसण-भयमइयारं।
जेसिं चउदालेदे, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।७।।

सान्वय अर्थ-जेसिं-जिनके, **मय-मूढमणायदणं**-मद, मूढ़ता और अनायतन, **संकाइ-वसण-भयं**-शंकादि दोष, व्यसन और भय, **अइयारं**-अतिचार, **चउदालेदे**-ये चवालीस दोष, **ण**-नहीं, **संति**-होते हैं, **ते**-वे, **सद्दिट्ठी**-सम्यग्दृष्टि, **होंति**-होते हैं।

अर्थ-जिनके (आठ) मद, (तीन) मूढ़ता, (छह) अनायतन, शंकादि (आठ) दोष, (सात) व्यसन, (सात) भय और (पाँच) अतिचार-ये चवालीस दोष नहीं होते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

श्रावक के सतहत्तर (७७) गुण

उहय-गुण-वसण-भय-मल-वेरग्गादीयार-भत्ति-विग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया, दंसण-सावय-गुणा भणिया।।८।।

सान्वय अर्थ-उहयगुण-दोनों गुण (आठ मूलगुण, बारह उत्तरगुण) **वसणभयमलवेरग्गादीयार**-सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल-दोष से रहित, वैराग्ययुक्त, अतिचार रहित, **वा**-और, **भत्तिविग्घं**-विघ्नरहित भक्ति, **एदे**-ये, **सत्तत्तरिया**-सतहत्तर, **दंसणसावयगुणा**-दर्शन-सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण, **भणिया**-कहे गये हैं।

अर्थ-दोनों गुण (आठ मूलगुण, बारह उत्तरगुण), सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल (दोष से रहित), बारह भावना (पाँच) अतिचार रहित और निर्विघ्न भक्ति-भावना-ये सम्यग्दृष्टि श्रावक के **सतहत्तर** गुण कहे गये हैं।

सम्यग्दृष्टि को मोक्ष-सुख मिलता है

देव-गुरु-समय-भत्ता, संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता।
रयणत्तय-संजुत्ता, ते मणुया सिव-सुहं पत्ता।।९।।

सान्वय अर्थ-जो मनुष्य, **देव-गुरु-समय-भत्ता**-देव, गुरु और शास्त्र के भक्त होते हैं, **संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता**-संसार, शरीर और भोगों के परित्यागी होते हैं; **रयणत्तय-संजुत्ता**-रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, **ते**-वे, **मणुया**-मनुष्य, **सिव-सुहं**-मोक्ष-सुख को, **पत्ता**-प्राप्त करते हैं।

अर्थ–(जो मनुष्य) देव, गुरु और शास्त्र के भक्त होते हैं, संसार, शरीर और भोगों के परित्यागी होते हैं और (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप) रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, वे मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं।

सम्यग्दर्शन-सहित बाह्यचारित्र मोक्ष का कारण है

दाणं पूया सीलं, उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीहसंसारं।।१०।।

सान्वय अर्थ–सम्मजुदं–सम्यग्दर्शन से युक्त, **दाणं**–दान, **पूया**–पूजा, **सीलं**–शील, **बहुविहं पि**–अनेकप्रकार के, **उववासं**–उपवास, **खवणं पि**–कर्म-क्षय के कारणभूत व्रत आदि, **मोक्खसुहं**–मोक्ष-सुख के कारण हैं; और **सम्मविणा**–सम्यग्दर्शन के बिना ये ही, **दीहसंसारं**–दीर्घसंसार के कारण हैं।

अर्थ–सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, शील, अनेक प्रकार के उपवास तथा कर्म-क्षय के कारणभूत व्रत आदि मोक्ष-सुख के कारण हैं और सम्यग्दर्शन के बिना ये ही दीर्घसंसार के कारण हैं।

श्रावक और मुनि के कर्त्तव्य

दाणं पूया-मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि।।११।।

सान्वय अर्थ–सावयधम्मे–श्रावकधर्म में, **दाणं**–दान और, **पूया**–पूजा, **मुक्खं**–मुख्य-कर्तव्य है, **तेण**–उसके, **विणा**–बिना, **सावया**–श्रावक, **ण**–नहीं होता है।, **जइधम्मे**–मुनिधर्म में, **झाणज्झयणं**–ध्यान और अध्ययन, **मुक्खं**–मुख्य कर्त्तव्य हैं, **तं**–उस ध्यान, अध्ययन के, **विणा**–बिना, **सो वि**–वह मुनिधर्म भी, **तहा**–वैसा ही अर्थात् व्यर्थ है।

अर्थ–श्रावकधर्म में दान और पूजा मुख्य (कर्त्तव्य) हैं। उसके (दान और पूजा के) बिना श्रावक नहीं होता। मुनिधर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य (कर्त्तव्य) हैं। उस (ध्यान, अध्ययन) के बिना वह मुनिधर्म भी वैसा ही (व्यर्थ) है।

बहिरात्मा पतंगे के समान है

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोह-कसायग्गि-मुहे, पडिदो मरिदो ण संदेहो।।१२।।

सान्वय अर्थ-जो-जो श्रावक, **दाण**-दान, **ण**-नहीं देता, **धम्म**-धर्म का, **ण**-पालन नहीं करता, **चाग**-त्याग, **ण**-नहीं करता, **भोग**-न्यायपूर्वक भोग, **ण**-नहीं करता है, **बहिरप्प**-वह बहिरात्मा है, **सो**-वह, **पयंगो**-ऐसा पतंगा है जो, **लोह-कसायग्गिमुहे**-लोभकषायरूपी अग्नि के मुख में, **पडिदो**-पड़ा हुआ, **मरिदो**-मर जाता है, **संदेहो**-इसमें सन्देह, **ण**-नहीं है।

अर्थ-जो श्रावक दान नहीं देता, धर्म का पालन नहीं करता, त्याग नहीं करता, न्यायपूर्वक भोग नहीं करता, वह बहिरात्मा है। वह ऐसा पतंगा है जो लोभकषायरूपी अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मर जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पूजा, दान करने वाला सम्यग्दृष्टि है

जिणपूया मुणिदाणं, करेदि जो देदि सत्तिरूवेण।
सम्मादिट्ठी सावय-धम्मी सो होइ मोक्ख-मग्ग-रदो।।१३।।

सान्वय अर्थ-जो-जो, **जिणपूया**-जिनदेव की पूजा, **करेदि**-करता है और, **सत्तिरूवेण**-शाक्ति के अनुसार, **मुणिदाणं**-मुनियों को दान, **देदि**-देता है, **सो**-वह, **सम्मादिट्ठी**-सम्यग्दृष्टि, **धम्मी**-धर्मात्मा, **सावय**-श्रावक है वह, **मोक्ख-मग्ग-रदो**-मोक्ष-मार्ग में रत, **होइ**-है।

अर्थ-जो जिनदेव की पूजा करता है और शक्ति के अनुसार मुनियों को दान देता है, वह श्रावक सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है। वह मोक्षमार्ग में रत है।

पूजा और दान का फल

पूयफलेण तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो।
दाणफलेण तिलोए, सारसुहं भुंजदे णियदं।।१४।।

सान्वय अर्थ-सुद्धमणो-शुद्ध मनवाला श्रावक, **पूयफलेण**-पूजा के

फल से, **तिलोक्के**–तीनों लोकों में, **सुरपुज्जो**–देवों से पूज्य, **हवदि**–होता है और, **दाणफलेण**–दान के फल से, **तिलोए**–तीनों लोकों में, **णियदं**–निश्चय से, **सारसुहं**–सारभूत सुख को, **भुंजदे**–भोगता है।

अर्थ–शुद्ध मनवाला श्रावक पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है और दान के फल से तीनों लोकों में निश्चय से सारभूत सुख को भोगता है।

जिनमुद्रा देखकर आहारदान का उपदेश

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो।
पत्तापत्तविसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण।।१५।।

सान्वय अर्थ–यदि **सायारो**–श्रावक, **भोयणमेत्तं**–भोजन–मात्र, **दाणं**–दान, **दिण्णइ**–देता है, तो वह, **धण्णो**–धन्य, **हवेइ**–हो जाता है, **सद्दंसणे**–जिन–लिंग को देखकर, **पत्तापत्तविसेसं**–पात्रापात्रविशेष के, **वियारेण**–विचार से या विकल्प करने से, **किं**–क्या लाभ है?

अर्थ–(यदि) श्रावक (मुनि को) भोजन–मात्र दान देता है, तो वह धन्य हो जाता है। (एक जिन–लिंग को) देखकर पात्रविशेष या अपात्रविशेष का विचार (विकल्प) करने से क्या (लाभ है)?

सुपात्र-दान से स्वर्ग, मोक्ष की प्राप्ति होती है

दिण्णइ सुपत्तदाणं, विसेसदो होइ भोग-सग्ग-मही।
णिव्वाणसुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।१६।।

सान्वय अर्थ–यदि **सुपत्तदाणं**–सुपात्र–दान, **दिण्णइ**–दिया जाता है तो, **विसेसदो**–विशेषरूप से, **भोगसग्गमही**–भोगभूमि और स्वर्ग, **होइ**–प्राप्त होता है, **कमसो**–और क्रमशः, **णिव्वाणसुहं**–निर्वाण–सुख मिलता है, **जिणवरिंदेहिं**–ऐसा जिनेन्द्र भगवंतों ने, **णिद्दिट्ठं**–कहा है।

अर्थ–(यदि) सुपात्र को दान दिया जाता है, तो उसके फलस्वरूप विशेष रूप से भोगभूमि और स्वर्ग को प्राप्त होता है। और क्रमशः निर्वाण–सुख मिलता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवों ने कहा है।

सुपात्र-दान का उत्तम फल

खेत्तविसेसे काले, ववियं-सुवीयं फलं जहा विउलं।
होइ तहा तं जाणह, पत्तविसेसेसु दाणफलं।।१७।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **खेत्तविसेसे**–विशेष–उत्तम क्षेत्र में, **काले**–उपयुक्त काल में, **ववियं**–बोया हुआ, **सुवीयं**–उत्तम बीज, **विउलं**–विपुल, **फलं**–फलवाला, **होइ**–होता है, **तहा**–उसी प्रकार, **पत्तविसेसेसु**–विशेष–उत्तम पात्रों को दिये, **तं**– उस, **दाणफलं**–दान के फल को, **जाणह**–जानो।

अर्थ–जैसे उत्तम क्षेत्र में, उपयुक्त काल में बोये हुए उत्तम बीज का विपुल फल मिलता है, उसी प्रकार उत्तम पात्रों को दिये उस दान के फल को जानो।

सप्त क्षेत्रों मे दिये दान का फल

इह णिय-सुवित्त-वीयं, जो ववइ जिणुत्त-सत्तखेत्तेसु।
सो तिहुवण-रज्ज-फलं, भुंजदि कल्लाण-पंच-फलं।।१८।।

सान्वय अर्थ–इह–इस लोक में, **जो**–जो पुरुष, **जिणुत्त सत्त खेत्तेसु**–जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित सप्त क्षेत्रों में, **णियसुवित्तवीयं**–अपने–नीतिपूर्वक उपार्जित–श्रेष्ठ धनरूपी बीज को, **ववइ**–बोता है, **सो**–वह, **तिहुवण–रज्जफलं**–त्रिभुवन के राज्यरूपी फल को और, **कल्लाणपंचफलं**–पंच कल्याणकरूप फल को, **भुंजदि**–भोगता है।

अर्थ–इस लोक में जो पुरुष जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित सप्तक्षेत्रों में अपने (नीतिपूर्वक उपार्जित) श्रेष्ठ धनरूपी बीज को बोता है, वह त्रिभुवन के राज्यरूपी फल को और पंचकल्याणकरूपी (तीर्थंकर के पद) फल को भोगता है।

दान के सात स्थान–

जिन बिम्बं जिनागारं जिन यात्रा महोत्सव।
जिन तीर्थं जिनागमं जिनायत नानि सप्तधा।।

सुपात्र-दान का फल

मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं, कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहण-विहवं।
संसार-सार-सोंक्खं, सव्वं जाणह सुपत्तदाण-फलं।।१९।।

सान्वय अर्थ–मादु–माता, **पिदु**–पिता, **पुत्त**–पुत्र, **मित्तं**–मित्र, **कलत्त**–स्त्री, **धण**–गाय आदि पशु, **धण्ण**–अनाज, **वत्थु**–मकान, **वाहण**–वाहन, **विहवं**–वैभव, **संसार–सार–सोंक्खं**–संसार के उत्तमसुख, **सव्वं**–यह सब, **सुपत्तदाण–फलं**–सुपात्र–दान का फल, **जाणह**–जानो।

अर्थ–माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय आदि पशु, अनाज, मकान, वाहन, वैभव और संसार के उत्तम सुख–ये सब सुपात्र–दान का फल जानो।

सुपात्र-दान का फल

सत्तंगरज्ज-णवणिहिभंडार-सडंगबल-चउद्दसरयणं।
छण्णवदि-सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं।।२०।।

सान्वय अर्थ–सत्तंगरज्ज–सप्तांग राज्य, **णवणिहि**–नवनिधि, **भंडार**–कोष, **सडंग बल**–छह प्रकार की सेना, **चउद्दसरयणं**–चौदह रत्न, **छण्णवदि–सहस्सित्थी**–छियानवे हजार स्त्रियाँ और, **विहवं**–वैभव–यह सब, **सुपत्तदाणफलं**–सुपात्र–दान का फल, **जाणह**–जानो।

अर्थ–सप्ताङ्ग राज्य, नवनिधि, कोष, छह प्रकार की सेना, चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्रियाँ और वैभव–यह सब सुपात्र–दान का फल जानो।

विशेष–सप्ताङ्ग राज्य–राजा, मन्त्री, मित्र, कोष, देश, किला और सेना।

नवनिधि–काल, महाकाल, पाण्डु, नैसर्प, पद्म, माणव, पिंगल, शंख सर्वरत्न।

षडंग सेना–यान, वाहन, विमान, हाथी, घोड़ा, रथ।

–(द्र0 पउमचरियं लंकापत्थाणवव्व, गाथा 37)

चौदह रत्न–चक्र, छत्र, असि, दण्ड, मणि, चर्म, और काकिणी–ये सात अजीवरत्न हैं। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री स्थपति और पुरोहित–ये सात सजीव रत्न हैं।

सुपात्र-दान का फल

सुकुल-सुरूव-सुलक्खण-सुमदि-सुसिक्खा-सुसील-सुगुण-सुचरितं।
सयलं सुहाणुभवणं, विहवं जाणह सुपत्तदाण-फलं।।२१।।

सान्वय अर्थ–सुकुल–उत्तम कुल, **सुरूव**–उत्तम रूप, **सुलक्खण**–उत्तम लक्षण, **सुमदि**–उत्तम बुद्धि, **सुसिक्खा**–उत्तम शिक्षा, **सुसील**–उत्तम स्वभाव, **सुगुण**–उत्तम गुण, **सुचरित्तं**–उत्तम चरित्र, **सयलं**–सकल, **सुहाणुभवणं**–सुखों का अनुभव और, **विहवं**–वैभव–यह सब, **सुपत्तदाणफलं**–सुपात्र–दान का फल, **जाणह**–जानो।

अर्थ–उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तम गुण, उत्तम चारित्र, सकल सुखों का अनुभव और वैभव (यह सब) सुपात्र–दान का फल जानो।

आहारदान के बाद शेषान्न को भोजन करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है

जो मुणि-भुत्तवसेसं, भुंजदि सो भुंजदे जिणुद्दिट्ठं।
संसारसार-सोक्खं, कमसो णिव्वाण-वरसोक्खं।।२२।।

सान्वय अर्थ–जो–जो भव्यजीव, **मुणिभुत्तवसेसं**–मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को प्रसाद मानकर, **भुंजदि**–ग्रहण करता है, **सो**–वह, **संसारसार–सोक्खं**–संसार के सारभूत सुखों को और, **कमसो**–क्रमशः, **णिव्वाण–वरसोक्ख**–मोक्ष के उत्तम सुख को, **भुंजदे**–भोगता है–ऐसा, **जिणुद्दिट्ठं**–जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–जो (भव्य जीव) मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को (प्रसाद मानकर) ग्रहण करता है, वह संसार के सारभूत सुखों को और क्रमशः मोक्ष के उत्तम सुख को भोगता है–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

मुनियों के आहार-दान में विवेक

सीदुण्ह-वाय-पिउलं-सिलेसिम्मं तह परिसमं वाहिं।
कायकिलेसुववासं, जाणिच्चा दिण्णए दाणं।।२३।।

सान्वय अर्थ-सीदुण्ह-शीत या उष्णकाल, **वाय-पिउलं-सिले-सिम्मं**-मुनि की वात, पित्त या कफ-प्रधान प्रकृति, **परिसमं**-परिश्रम (तह) तथा, **वाहिं**-व्याधि, **कायकिलेसं**-कायक्लेश तप और, **उववासं**-उपवास, **जाणिच्चा**-जानकर, **दाणं**-दान, **दिण्णए**-दिया जाता है।

अर्थ-शीत या उष्ण (काल-ऋतु), (मुनि की प्रकृति) वात, पित्त या कफ (प्रधान है), (गमनागमन या ध्यानासनों में होने वाले) परिश्रम, रोग, कायक्लेश तप और उपवास (आदि सारी बातों को) जानकर दान दिया जाता है।

विशेष-मुनियों की प्रकृति और ऋतु के अनुकूल संयमवर्धक आहार देना चाहिये।

मुनि के लिए देय वस्तु में विवेक

हिद-मिदमण्णं-पाणं, णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासणमुवयरणं, जाणिच्चा देइ मोक्खमग्गरदो।।२४।।

सान्वय अर्थ-मोक्खमग्गरदो-मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति, **हिदमिदं**-हित और मित, **अण्णं**-अन्न, **पाणं**-पान, **णिरवज्जोसहिं**-निर्दोष औषधि, **णिराउलं**-निराकुल, **ठाणं**-स्थान, **सयणासणमुवयरणं**-शयनोपकरण और आसनोपकरण, **जाणिच्चा**-आवश्यकता जानकर, **देइ**-देता है।

अर्थ-मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति (मुनि को) हितकारी और परिमित अन्न-पान, निर्दोष औषधि, निराकुल-स्थान, शयनोपकरण और आसनोपकरण (आवश्यकतानुसार एवं जानकर) देता है।

गर्भस्थ बाल के समान मुनियों की वैयावृत्त्य करें

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिज्जा।
गब्भब्भमेव मादा-पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया।।२५।।

सान्वय अर्थ-जहेह-जैसे इसलोक में, **मादा-पिदुच्च**-माता और पिता, **गब्भब्भमेव**-गर्भस्थित शिशु का सावधानी से पालन करते हैं; **तहा**-उसी प्रकार, **अणयाराणं**-मुनियों की, **जाणिज्जा**-प्रकृति आदि जानकर, **णिच्चं**-सदा, **णिरालसया**-आलस्य-रहित होकर, **वेज्जावच्चं**-वैयावृत्त्य, **कुज्जा**-करनी चाहिए।

अर्थ–जैसे इस लोक में माता और पिता गर्भ–स्थित शिशु का सावधानी से पालन करते हैं, उसी प्रकार मुनियों की प्रकृति आदि (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) जानकर सदा आलस्य रहित होकर वैयावृत्य करनी चाहिए।

सम्यग्दृष्टि और लोभी पुरुष के दान में अन्तर

सप्पुरिसाणं दाणं, कप्पतरूणं फलाण सोहा वा।
लोहीणं दाणं जदि, विमाण सोहा सवं जाणे।।२६।।

सान्वय अर्थ–सप्पुरिसाणं–सत्पुरुषों (सम्यग्दृष्टि जनों का), **दाणं**–दान, **कप्पतरूणं**–कल्पवृक्ष के, **फलाण**–फलों की, **सोहा**–शोभा के, **वा**–समान (होता है), **लोहीणं**–लोभीपुरुषों का, **जदि**–जो, **दाणं**–दान है, वह, **विमाण सवं**–अर्थी के शव की, **सोहा**–शोभा के समान है, **जाणे**–ऐसा जानो।

अर्थ–सत्पुरुषों (सम्यग्दृष्टि) का दान कल्पवृक्ष के फलों की शोभा के समान है और लोभी पुरुषों का जो दान है, वह अर्थी के शव की शोभा के समान है–ऐसा जानो।

विशेष–दान देते समय कभी लोभ नहीं करना चाहिए, शक्ति के अनुसार दान दें, शक्ति से कम या अधिक नहीं।

लोभी का दान

जस-कित्ति-पुण्णलाहे, देइ सुबहुगं पि जत्थ तत्थेव।
सम्माइ-सुगुणभायण, पत्तविसेसं ण जाणंति।।२७।।

सान्वय अर्थ–लोभी पुरुष, **जस–कित्ति–पुण्णलाहे**–यश, कीर्ति और पुण्य–लाभ के लिए, **जत्थ तत्थेव**–यत्र–तत्र कुपात्र आदि को, **सुबहुगं पि**–बहुत भी, **देइ**–दान देता है, वह, **सम्माइसुगुणभायण**–सम्यक्त्वादि उत्तम–गुणों के आधार, **पत्तविसेसं**–सुपात्र को, **ण जाणंति**–नहीं जानता।

अर्थ–(लोभी पुरुष) यश, कीर्ति और पुण्य–लाभ के लिए यत्र–तत्र (कुपात्र आदि को) बहुत दान देता है। वह सम्यक्त्वादि उत्तमगुणों के आधार सुपात्र को नहीं जानता।

विशेष–सुपात्रों को दिये गये दान का ही उत्तम फल होता है, कुपात्र दान का नहीं।

ऐहिक कामना से दिया दान निरर्थक है

जंतं मंतं तंतं, परिचरिदं पक्खवाद पियवयणं।
पडुच्च पंचमयाले, भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स।।२८।।

सान्वय अर्थ–पंचमयाले–इस पंचमकाल में, **भरहे**–भरतक्षेत्र में, **जंतं**–यंत्र, **मंतं**–मंत्र, **तंतं**–तंत्र, **परिचरिदं**–सेवा परिचर्या, **पक्खवाद**–पक्षपात, **पियवयणं**–प्रियवचन और, **पडुच्च**–प्रतीति (विश्वास) के लिए दिया हुआ, **किं पि**–कोई भी, **दाणं**–दान, **मोक्खमग्गस्स**–मोक्षमार्ग का कारण, **ण**–नहीं है।

अर्थ–इस पंचमकाल में भरतक्षेत्र में यंत्र–मंत्र–तंत्र (की प्राप्ति के लिए), सेवा (परिचर्या के लिए), पक्षपात से, प्रियवचन और प्रतीति (मान–प्रतिष्ठा) के लिए दिया हुआ कोई भी दान 'मोक्ष' का कारण नहीं है।

विशेष–इसलिए दान निष्कांक्ष भाव से, नवधा भक्ति से युक्त होकर देना चाहिए।

पूर्वोपार्जित कर्म का फल

दाणीणं दारिद्दं लोहीणं किं हवेइ मह इसरियं।
उहयाणं पुव्वज्जिय कम्मफलं जाव होइ थिरं।।२९।।

सान्वय अर्थ–दाणीणं–दानी पुरुषों के, **दारिद्दं**–दरिद्रता और, **लोहीणं**–लोभीपुरुषों के, **महइसरियं**–महान् ऐश्वर्य, **किं**–क्यों, **हवेइ**–होता है ? **जाव**–जब तक, **उहयाणं**–दोनों के, **पुव्वज्जिय**–पूर्वोपार्जित, **कम्मफलं**–कर्म–फल, **थिरं**–स्थिर–उदय में, **होइ**–रहता है।

अर्थ–दानी पुरुषों के दरिद्रता और लोभी पुरुषों के महान् ऐश्वर्य क्यों होता है ? (देखा जाता है); (इसका उत्तर है कि) जब तक दोनों का पूर्वोपार्जित कर्मफल स्थिर (उदय में) रहता है।

विशेष–दान से दरिद्रता एवं लोभ से ऐश्वर्य का नाश होता है, अतः ऐश्वर्य चाहने वाले भव्य जीवों को नित्य सुपात्रों को दान दें।

मुनि-दान से सुख होता है

धण-धण्णाइ-समिद्धे, सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं।
मुणिदाणाइ-समिद्धे, सुहं तहा तं विणा दुक्खं।।३०।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **धण–धण्णादि–समिद्धे**–धन–धन्यादि की समृद्धि से, **सव्वजीवाणं**–समस्त जीवों को, **सुहं**–सुख, **होइ**–होता है, **तहा**–उसी प्रकार, **मुणिदाणइसमिद्धे**–मुनि–दान आदि की समृद्धि से, **सुहं**–सुख होता है, **तं विणा**–उसके बिना, **दुक्खं**–दुःख होता है।

अर्थ–जैसे धन–धान्यादि की समृद्धि से समस्त जीवों को सुख होता है, उसी प्रकार मुनि–दान आदि की समृद्धि से सुख होता है और उसके बिना दुःख होता है।

विशेष–दान के बिना समृद्धि नहीं होती, कदाचित् पूर्व पुण्य से हो भी जाये तो बिना दान के उससे सुख नहीं होता।

सुपात्र के बिना दान निष्फल

पत्त विणा दाणं च सुपुत्त विणा बहुधणं महाखेत्तं।
चित्त विणा वय-गुण-चारित्तं णिक्कारणं जाणे।।३१।।

सान्वय अर्थ–पत्त विणा–सुपात्र के बिना, **दाणं**–दान, **च**–और, **सुपुत्त विणा**–सुशील पुत्र के बिना, **बहुधणं**–बहुत धन और, **महाखेत्तं**–महाक्षेत्र–(जमीन–जायदाद), **चित्त विणा**–भावों के बिना, **वय–गुण–चारित्तं**–व्रत, गुण और चारित्र, **णिक्कारणं**–ये सभी निष्फल, **जाणे**–जानो।

अर्थ–सुपात्र के बिना दान, सुशील पुत्र के बिना बहुत धन और महाक्षेत्र (जमीन–जायदाद), भावों के बिना व्रत, गुण और चारित्र–(ये सभी) निष्फल जानो।

विशेष–सुपात्र दान के बिना धन की सार्थकता नहीं हो सकती।

धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम
(निर्माल्य सेवन का कुफल)

जिण्णुद्धार-पदिट्ठा जिणपूया-तित्थवंदण वसेसधणं।
जो भुंजदि सो भुंजदि, जिणदिट्ठं णरय-गदि-दुक्खं।।३२।।

सान्वय अर्थ–जो–जो व्यक्ति, **जिण्णुद्धार**–जीर्णोद्धार, **पदिट्ठा**–प्रतिष्ठा, **जिणपूया**–जिनपूजा, **तित्थवंदण**–तीर्थ-यात्रा के, **वसेसधणं**–अवशिष्ट धन को, **भुंजदि**–भोगता है, **सो**–वह, **णरयगदिदुक्खं**–नरकगति के दु:ख को, **भुंजदि**–भोगता है, **जिणदिट्ठं**–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–जो व्यक्ति जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा और तीर्थयात्रा के अवशिष्ट धनको भोगता है, वह नरकगति के दु:ख को भोगता है–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

विशेष–यद्यपि भीख मांगना निन्द्य है, फिर भी निर्माल्य सेवन की अपेक्षा भीख माँगकर खा लेना अच्छा है, निर्माल्य सेवन दीर्घकाल तक दारुण दु:खों को देने वाला है।

धर्मद्रव्य के भोग का दुष्परिणाम
(पूजा, दानादि के द्रव्य सेवन का कुफल)

पुत्त-कलत्त-विदूरो, दारिद्दो पंगु-मूक-बहिरंधो।
चांडालादि-कुजादो, पूया-दाणादि दव्वहरो।।३३।।

सान्वय अर्थ–पूया–दाणादि–पूजा, दान आदि के, **दव्वहरो**–द्रव्य का अपहरण करने वाला, **पुत्त–कलत्त–विदूरो**–पुत्र-स्त्री-रहित, **दारिद्दो**–दरिद्री, **पंगु–मूक–बहिरंधो**–लंगड़ा, गूँगा, बहरा, अन्धा और, **चांडालादि–कुजादो**–चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

अर्थ–पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला पुत्र-स्त्री-रहित, दरिद्री, लंगड़ा, गूँगा, बहरा, अन्धा और चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

विशेष–भूखे रहकर प्राण दे देना अच्छा है, किन्तु निर्माल्य सेवन अच्छा नहीं, क्योंकि निर्माल्य सेवन अनंत दु:खों का हेतु है।

धार्मिक-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

इच्छिदफलं ण लब्भइ, जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो, पूयादाणाइ दव्वहरो।।३४।।

सान्वय अर्थ-पूयादाणाइ दव्वहरो-पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला, **इच्छिदफलं**-इच्छितफल को, **ण लब्भइ**-प्राप्त नहीं करता है; **जइ**- यदि, **लब्भइ**-प्राप्त करता है तो, **सो**-वह, **ण भुंजदे**-उसको भोग नहीं पाता, **णियदं**-यह निश्चित है, **सो**-वह, **वाहीणमायरो**-व्याधियों का घर बन जाता है।

अर्थ-पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला इच्छित फल को प्राप्त नहीं करता है। यदि प्राप्त करता है, तो वह उसे भोग नहीं पाता-यह निश्चित है। वह व्याधियों का घर बन जाता है।

विशेष-निर्माल्य सेवन करने वाला महारोगों का घर बन जाता है।

धार्मिक-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

गदहत्थपादणासिय-कण्णउरंगुल विहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो, पूयादाणाइ दव्वहरो।।३५।।

सान्वय अर्थ-जो-जो व्यक्ति, **पूयादाणाइ दव्वहरो**-पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है-वह, **गदहत्थ-पाद-णासिय-कण्ण-उरंगल**-हाथ, पैर, नाक, कान, छाती और अंगुली से हीन, **विहीणदिट्ठीए**-दृष्टिहीन, और **तिव्वदुक्खमूलो**-तीव्र दु:ख को प्राप्त होता है।

अर्थ-जो व्यक्ति पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है, वह हाथ-पैर-नाक-कान-छाती और अंगुली से हीन (विकलांग), दृष्टिहीन, और तीव्र दु:ख का भागी होता है।

धर्मकार्यों में विघ्न डालने का फल

खय-कुट्ठ-मूल-सूला, लूय-भयंदर-जलोयरिक्खि-सिरो।
सीदुण्ह-वाहिराइ, पूया-दाणंतराय-कम्मफलं।।३६।।

सान्वय अर्थ–खय–कुट्ठ–मूल–सूला–क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, **लूय–भयंदर–जलोयरक्खि–सिरो**–लूता (एक वातिक–रोग अथवा मकड़ी का फरना), भगंदर, जलोदर, नेत्ररोग, सिर के रोग, **सीदुण्ह–वाहिरादी**–शीतोष्ण से होने वाली सन्निपात आदि व्याधियाँ–ये सब, **पूया–दाणंतराय–कम्मफलं**–पूजा, दान आदि में अन्तराय डालने के कर्म–फल हैं।

अर्थ–क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, लूता (एक वातिक रोग अथवा मकड़ी का फरना), भगंदर, जलोदर, नेत्र रोग, सिर के रोग, शीतोष्ण से होने वाला सन्निपात आदि व्याधियाँ–ये सब पूजा एवं दान आदि धार्मिक कार्यों में अन्तराय डालने के कर्मफल हैं।

विशेष–कभी किसी व्यक्ति को पूजा, दानादि कार्य करने से न रोकें।

धर्मकार्यों में विघ्न डालने का फल

णरइ-तिरियाइ-दुगइ, दारिद्द-वियलंग-हाणि-दुक्खाणि।
देव-गुरु-सत्थवंदण-सुदभेद-सज्झाय-विघणफलं।।३७।।

सान्वय अर्थ–णरइ–तिरियाइ–दुगदी–नरकगति, तिर्यञ्चगति आदि दुर्गतियाँ, **दारिद्द–वियलंग–हाणि–दुक्खाणि**–दरिद्रता, विकलांग, हानि और दु:ख–ये सब, **देव–गुरु–सत्थवंदण**–देव–वंदना, गुरु–वंदना, शास्त्र–वंदना, **सुदभेद–सज्झाय विघणफलं**–श्रुतभेद, स्वाध्याय में विघ्न डालने के फल हैं।

अर्थ–नरकगति, तिर्यञ्चगति, दुर्गति, दरिद्रता, विकलांग, हानि और दु:ख–यह सब देव–वंदना, गुरु–वंदना, शास्त्र–वंदना, श्रुतभेद और स्वाध्याय में विघ्न डालने के फल हैं।

पंचमकाल का दुष्प्रभाव

सम्मविसोही-तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं।
भरहे दुस्समकाले, मणुयाणं जायदे णियदं।।३८।।

सान्वय अर्थ–इस **भरहे**–भरत क्षेत्र में, **दुस्समकाले**–दु:खम–पंचमकाल में, **मणुयाणं**–मनुष्यों के, **णियदं**–निश्चय ही, **सम्मविसोही**–सम्यग्दर्शन

की विशुद्धि, **तव-गुण-चारित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं**-तप, मूलगुण, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान और दान में हीनता, **जायदे**-होती है।

अर्थ-(इस) भरत क्षेत्र में दु:खम (पंचमकाल) में मनुष्यों के निश्चय ही सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, तप, मूलगुण, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान और दान में हीनता होती है (पायी जाती है)।

धर्माचरण के बिना दुर्गति

णहि दाणं णहि पूजा, णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिदा ते, णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया।।३९।।

सान्वय अर्थ-जे-जो मनुष्य, **णहि**-न तो, **दाणं**-दान देते हैं, **णहि**-न ही, **पूया**-पूजा करते हैं, **णहि**-न ही, **सीलं**-शील पालते हैं, **णहि**-न करते, **गुणं**-गुण-धारण करते हैं और, **ण**-न, **चारित्त**-चारित्र पालते हैं, **ते**-वे, **णेरइया**-नारकी, **कुमाणुसा**-कुमानुष और, **तिरिया**-तिर्यञ्च, **होंति**-होते हैं-ऐसा, **जाइणा**-जिनदेव ने, **भणिदा**-कहा है।

अर्थ-जो मनुष्य न तो दान (देते हैं), न ही पूजा (करते हैं), न ही शील (पालते हैं), न ही गुण (धारण करते हैं) और न चारित्र (पालते हैं), वे नारकी, कुमानुष और तिर्यञ्च होते हैं-ऐसा जिनदेव ने कहा है।

विवेक के बिना सम्यक्त्व नहीं होता

ण वि जाणदि कज्ज मकज्जं सेयमसेयं पुण्ण-पावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्म-उम्मुक्को।।४०।।

सान्वय अर्थ-जो **कज्जमकज्जं**-कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, **सेयमसेयं**-श्रेय और अश्रेय, **पुण्ण-पावं**-पुण्य और पाप, **तच्चमतच्चं**-तत्त्व और अतत्त्व, **धम्ममधम्मं**-धर्म और अधर्म को, **हि**-निश्चय से, **ण वि**-नहीं, **जाणदि**-जानता है, **सो**-वह, **सम्म-उम्मुक्को**-सम्यक्त्व से रहित है।

अर्थ-जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, श्रेय-अश्रेय (हित-अहित), पुण्य-पाप, तत्त्व-अतत्त्व, और धर्म-अधर्म को निश्चय से (वस्तुत:) नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

अविवेकी को सम्यक्त्व नहीं होता

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्म-उम्मुक्को।।४१।।

सान्वय अर्थ–जो **जोग्गमजोग्गं–**योग्य–अयोग्य, **णिच्चमणिच्चं–**नित्य–अनित्य, **हेयमुवादेयं–**हेय–उपादेय, **सच्चमसच्चं–**सत्य–असत्य, **भव्वमभव्वं–**भव्य–अभव्य को, **ण वि–**नहीं, **जाणइ–**जानता है, **सो–**वह, **सम्मउम्मुको–**सम्यक्त्व से रहित है।

अर्थ–जो योग्य–अयोग्य, नित्य–अनित्य, हेय–उपादेय, सत्य–असत्य और भव्य–अभव्य को नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

लौकिकजनों की संगति त्याज्य है

लोइयजण-संगादो, होदि महामुहर-कुडिल-दुब्भावो।
लोइयसंगं तम्हा, जोइवि तिविहेण मुच्चाहो।।४२।।

सान्वय अर्थ–मनुष्य, **लोइयजण–संगादो**–लौकिकजनों की संगति से, **महामुहर–कुडिल–दुब्भावो**–अत्यन्त वाचाल, कुटिल और दुर्भावनायुक्त,, **होदि**–हो जाता है, **तम्हा**–इसलिये, **जोइवि**–देखभाल कर, **लोइयसंगं**–लौकिकजनों की संगति को, **तिविहेण**–मन–वचन–काय से, **मुच्चाहो**–छोड़ देना चाहिए।

अर्थ–(मनुष्य) लौकिकजनों (संसारी रागी–द्वेषी) की संगति से अत्यन्त वाचाल, कुटिल और दुर्भावनायुक्त हो जाता है, इसलिए देखभाल कर (विचारपूर्वक) लौकिकजनों की संगति को मन–वचन–काय से छोड़ देना चाहिए।

विशेष– संगति से गुण ऊपजै, संगति से गुण जाय।
बांस फांस अरू मीसरी एक ही भाव बिकाय।।
कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसो ही फल दीन।।

सम्यक्त्व-रहित जीव की पहचान

उग्गो तिव्वो, दुट्ठो, दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मद-रदो विरुद्धो, सो जीवो सम्म-उम्मुक्को।।४३।।

सान्वय अर्थ–जो, **उग्गो**–उग्र, **तिब्बो**–तीव्र, **दुट्ठो**–दुष्ट, **दुब्भावो**–दुर्भावनायुक्त, **दुस्सुदो**–मिथ्याशास्त्रों का श्रवण करने वाला, **दुरालावो**–दुष्टभाषी, **दुम्मदरदो**–मिथ्या मद में अनुरक्त और, **विरुद्धो**–आत्मधर्म के विरुद्ध है, **सो जीवो**–वह जीव, **सम्मउम्मुक्को**–सम्यक्त्व–रहित है।

अर्थ–जो उग्र (प्रकृतिवाला है), तीव्र (स्वभाववाला है), दुष्ट (प्रकृति का है), दुर्भाव (दु:शील है), मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करनेवाला है, दुष्टभाषी है, मिथ्यामद में अनुरक्त है और विरुद्ध (आत्मधर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला) है, वह जीव सम्यक्त्व–रहित है।

दुष्ट-स्वभावी को सम्यक्त्व नहीं होता

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो, अणिट्ठ पिसुणो सगव्वियोसूयो।
गायण-जायण-भंडण-दुस्सणसीलो दुसम्म-उम्मुक्को।।४४।।

सान्वय अर्थ–खुदो–क्षुद्र, **रुद्दो**–रौद्र, **रुट्ठो**–रुष्ट, **अणिट्ठ**–दूसरों का अनिष्ट चाहने या करने वाला, **पिसुणो**–चुगलखोर, **सगव्वियो**–अभिमानी, **असूयो**–असहिष्णु/ईर्ष्यालु, **गायण**–गायक, **जायण**–याचक, **भंडण**–कलह करने वाले/गाली देनेवाले, **दु**–और, **दुस्सणसीलो**–दूसरों को दोष लगाने वाले ये सब, **सम्मउम्मुक्को**–सम्यक्त्व–रहित होते हैं।

अर्थ–क्षुद्र–रौद्र (स्वभाववाले), रुष्ट, दूसरों का अनिष्ट चाहने या करने वाले, चुगलखोर, अभिमानी, असहिष्णु (ईर्ष्यालु), गायक, याचक, कलह करने वाले (गाली देने वाले) और दूसरों को दोष लगाने वाले– ये सब सम्यक्त्व–रहित होते हैं।

दुष्ट-स्वभावी को सम्यक्त्व नहीं होता

वाणर - गद्दह - साण - गय, बग्घ - बराह - कराह।
मक्खि-जलूय-सहाव णर, जिणवरधम्म-विणास।।४५।।

सान्वय अर्थ–वाणर–बन्दर, **गद्दह**–गधा, **साण**–कुत्ता, **गय**–हाथी, **बग्घ**–बाघ, **बराह**–सूअर, **कराह**–कच्छप, **मक्खि**–मक्खी और, **जलूय सहाव**–जोंक के स्वभाववाले, **णर**–मनुष्य, **जिणवरधम्म**–जिनेन्द्रदेव के धर्म का, **विणास**–विनाश करने वाले होते हैं।

अर्थ–बन्दर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सूअर, कच्छप, मक्खी और जोंक के स्वभाववाले मनुष्य जिनेन्द्रदेव के धर्म का विनाश करने करने वाले होते हैं।

विशेष–उक्त जीवों के स्वभाव क्रमशः चंचली, मूल विनाशक, स्वजाति विद्रोही, मल प्रिय, गुण अग्राही (अप्रभावक), लोभी, दोष ग्राही होते हैं।

सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता

सम्म विणा सण्णाणं, सच्चारित्तं ण होदि णियमेण।
तो रयणत्तय-मज्झे, सम्मगुणुक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं।।४६।।

सान्वय अर्थ–सम्म विणा–सम्यग्दर्शन के बिना, **सण्णाणं**–सम्यग्ज्ञान और, **सच्चारित्तं**–सम्यक्चारित्र, **णियमेण**–नियम से, **ण**–नहीं, **होदि**–होते हैं, **तो**–इसलिए, **रणत्तय–मज्झे**–रत्नत्रय में, **सम्मगुणुक्किट्ठं**–सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है, **इदि**–यह, **जिणुद्दिट्ठं**–जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम से नहीं होते हैं, इसीलिए रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है–यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

विशेष– दर्शन ज्ञान चारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शन कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते।।31।। र. श्रा.
विद्या–वृतस्य–संभूति–स्थिति–वृद्धि–फलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव।।32।। र. श्रा.

सम्यक्त्व-हानि के कारण

कुतव-कुलिंगि-कुणाणी, कुवय-कुसीले कुदंसण-कुसत्थे।
कुणिमित्ते संथुय थुइ, पसंसण सम्महाणि होइ णियमं।।४७।।

सान्वय अर्थ–कुतव–मिथ्यातप, **कुलिंग**–कुलिंगी (मिथ्यावेष धारण करने वाले), **कुणाणी**–मिथ्याज्ञानी, **कुवय**–मिथ्याव्रत, **कुसीले**–मिथ्याशील, **कुदंसण**– मिथ्यादर्शन, **कुसत्थे**–मिथ्या शास्त्र, **कुणिमित्ते**–झूठे निमित्तों की, **संथुय**–संस्तुति, **थुइ**–स्तुति और, **पसंसणं**–प्रशंसा करने से, **णियम**–नियम से, **सम्महाणि**–सम्यक्त्व की हानि, **होइ**–होती है।

अर्थ–मिथ्यातप, कुलिंगी (मिथ्यादृष्टि साधु), मिथ्याज्ञानी, मिथ्याव्रत, मिथ्याशील, मिथ्यादर्शन, मिथ्याशास्त्र और झूठे निमित्तों की संस्तुति और प्रशंसा करने से नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है।

मिथ्यात्व ही दु:खों का कारण है

तणुकुट्ठी कुलभंगं, कुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणादि सुगुणभंगं गदिभंगं मिच्छमेव हो! कट्ठं।।४८।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **तणुकुट्ठी**–शरीर का कोढ़ी व्यक्ति, **कुलभंगं**–अपने कुल का विनाश, **कुणइ**–कर देता है, **तहा**–उसी प्रकार, **मिच्छं वि**–मिथ्यादृष्टि जीव भी, **अप्पणो**–अपने, **दाणादि सुगुणभंगं**–दान आदि सद्गुणों का विनाश और, **गदिभंगं**–सद्गति का विनाश करता है, **हो!**–अहो!, **मिच्छमेव**–मिथ्यात्व ही, **कट्ठं**–कष्टप्रद है।

अर्थ–जैसे शरीर का कोढ़ी (अपने रक्त–सम्बन्ध से) अपने कुल का विनाश कर देता है, उसीप्रकार मिथ्यात्व भी अपनी आत्मा के दान आदि सद्गुणों और सद्गति का विनाश करता है। अहो! (संसार में) मिथ्यात्व ही कष्टप्रद है।

सम्यग्दृष्टि ही धर्म को जानता है

देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्त-तवायार-मोक्खगइभेयं।
जिणवयण सुदिट्ठि विणा, दीसदि किं जाणदे सम्मं।।४९।।

सान्वय अर्थ–देव–गुरु–धम्म–गुण–चारित्त–तवायार–मोक्खगइभेयं–देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्त, तपाचार, मोक्षगति का रहस्य, **जिणवयण**–जिनदेव के वचन, **सुदिट्ठि विणा**–सम्यग्दृष्टि के बिना, **किं**–क्या,

दीसदि-दीखते हैं? या, **जाणदे**-जाने जा सकते हैं ? **सम्मं**-सम्यग्दर्शन ही इन सबको देखता, जानता है।

अर्थ-देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्र, तपाचार, मोक्षगति का रहस्य और जिनदेव के वचन सम्यग्दृष्टि के बिना क्या देखे या जाने जा सकते हैं? (वस्तुतः) सम्यग्दर्शन ही इन सबको देखता और जानता है।

मिथ्यादृष्टि की प्रवृत्ति

एक्क खणं ण वि चिंतदि, मोक्ख-णिमित्तं णियप्प-सब्भावं।
अणिसि विचिंतदि पावं, बहुलालावं मणे विचिंतेदि।।५०।।

सान्वय अर्थ-मिथ्यादृष्टि जीव **मोक्खणिमित्तं**-मोक्ष-प्राप्ति में निमित्तभूत, **णियप्पसब्भावं**-अपने आत्म-स्वभाव का, **एक्क खणं वि**-एक क्षण भी, **णचिंतदि**-चिन्तन नहीं करता है और, **अणिसि**-दिनरात, **पावं**-पाप का, **विचिंतदि**- चिन्तन करता है तथा, **मणे**-मन में, **बहुलालावं**-दूसरों के बारे में अनेक बातें, **विचिंतेदि**-सोचता रहता है।

अर्थ-(मिथ्यादृष्टि जीव) मोक्ष-प्राप्ति के निमित्तभूत अपने आत्म-स्वभाव का चिन्तन एक क्षण भी नहीं करता। दिन-रात पाप का चिन्तन करता है और मन में (दूसरों के बारे में) अनेक बातें सोचता रहता है।

मिथ्यादृष्टि आत्मा को नहीं जानता

मिच्छामइ मद-मोहासव-मत्तो बोल्लदे जहा भुल्लो।
तेण ण जाणइ अप्पा, अप्पाणं सम्मभावाणं।।५१।।

सान्वय अर्थ-मिच्छामइ-मिथ्यादृष्टि, **मद-मोहासव-मत्तो-**मद और मोह की मदिरा से मतवाला होकर, **जहा भुल्लो-**भुलक्कड़ के समान, **बोल्लदे-**प्रलाप करता है, **तेण-**इसलिए वह, **अप्पा-**अपनी आत्मा को और, **अप्पाणं-**आत्मा के, **सम्मभावाणं-**साम्यभावों को, **ण जाणइ-**नहीं जानता है।

अर्थ-मिथ्यादृष्टि जीव मद और मोह की मदिरा से मतवाला होकर भुलक्कड़ के समान प्रलाप करता है, इसीलिए वह आत्मा को और आत्मा के साम्यभावों को नहीं जानता है।

उपशमभाव से संवर और निर्जरा होती है

पुव्वट्ठिद खवेइ कम्मं, पविसदु णो देइ अहिणवं कम्मं।
इह-परलोय-महप्पं, देइ तहा उवसमो भावो।।५२।।

सान्वय अर्थ–उवसमो भावो–भव्य जीवों का उपशमभाव, **पुव्वट्ठिद कम्म**–पूर्व में स्थित/वद्ध कर्मों का, **खवेइ**–क्षय करता है, **अहिणवं कम्मं**–नये कर्मों को, **पविसदु**–प्रवेश करने, **णो देदि**–नहीं देता, **तहा**–तथा, **इह–परलोय महप्पं**–इस लोक और परलोक में माहात्म्य, को **देइ**–देता है/प्रगट करता है।

अर्थ–(भव्य जीवों का) उपशमभाव पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय (निर्जरा) करता है, नये कर्मों को प्रवेश नहीं करने देता (नये कर्मों का संवर करता है) तथा इस लोक और परलोक में माहात्म्य प्रगट करता है।

विशेष–कषायों के उपशमन पापास्त्रव का संवर एवं पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती है।

सम्यग्दृष्टि ज्ञान-वैराग्य में काल बिताता है

सम्मादिट्ठी कालं, बोल्लइ वेरग्ग-णाणभावेहिं।
मिच्छाइट्ठी वांछा, दुब्भावालस्स-कलहेहिं।।५३।।

सान्वय अर्थ–सम्माइट्ठी–सम्यग्दृष्टि, **वेरग्ग–णाणभावेहिं**–वैराग्य और ज्ञानभाव से, **कालं**–समय को, **बोल्लइ**–बिताता है; जबकि, **मिच्छाइट्ठी**–मिथ्यादृष्टि, **वांछा**–आकांक्षा, **दुब्भावालस्स**–दुर्भाव, आलस्य और, **कलहेहिं**–कलह के द्वारा अपना समय बिताता है।

अर्थ–सम्यग्दृष्टि वैराग्य और ज्ञानभाव से समय को व्यतीत करता है, (जबकि) मिथ्यादृष्टि आकांक्षा, दुर्भाव, आलस्य और कलह से (अपना) समय बिताता है।

भरत क्षेत्र में पापी अधिक हैं

अज्जवसप्पिणि भरहे, पउरा रुद्दट्ठझाणया दिट्ठा।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा, पाविट्ठा किण्ह-णील-काओदा।।५४।।

सान्वय अर्थ–अज्जवसप्पिणि–आज/वर्तमान अवसर्पिणीकाल में, **भरहे**–भरत क्षेत्र में, **रुद्दट्ठझाणया**–रौद्र और आर्तध्यान वाले, **णट्ठा**–नष्ट, बुद्धि, **दुट्ठा**–दुष्ट, **कट्ठा**–(कष्ट) दु:खी, **पाविट्ठा**–पापी, **किण्ह–णील–काओदा**–कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले, **पउरा**–(प्रचुर मात्रा में) अधिक मनुष्य, **दिट्ठा**–देखे जाते हैं।

अर्थ–वर्तमान अवसर्पिणी (काल) में भरत क्षेत्र में रौद्र और आर्तध्यान वाले, नष्ट बुद्धि वाले, दुष्ट (कष्ट युक्त), दु:खी, पापी और कृष्ण–नील–कापोत लेश्या वाले मनुष्य अधिक देखे जाते हैं।

भरत क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि दुर्लभ है

अज्जवसप्पिणि भरहे, पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति।।५५।।

सान्वय अर्थ–अज्जवसप्पिणि–आज/वर्तमान अवसर्पिणीकाल में, **भरहे**–भरत क्षेत्र में, **पंचमयाले**–पंचमकाल में, **मिच्छपुव्वया**–मिथ्यादृष्टि जीव, **सुलहा**–सुलभ हैं, किन्तु, **सम्मत्तपुव्व**–सम्यग्दृष्टि, **सायारणयारा**–गृहस्थ और मुनि, **दुल्लहा**–दुर्लभ, **होंति**–हैं।

अर्थ–वर्तमान अवसर्पिणी (काल) में भरत क्षेत्र में पंचमकाल में मिथ्यादृष्टि जीव सुलभ हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनि दुर्लभ हैं।

विशेष–दुर्लभ का आशय अभाव से नहीं संख्या की न्यूनता से है।

इस काल में भी धर्मध्यान होता है

अज्जवसप्पिणि भरहे, धम्मज्झाणं पमाद-रहिदो त्ति।
होदि त्ति जिणुद्दिट्ठं, ण हु मण्णइ सो हु कुद्दिट्ठी।।५६।।

सान्वय अर्थ–अज्जवसप्पिणि–आज/वर्तमान अवसर्पिणीकाल में, **भरहे**–भरत क्षेत्र में, **धम्मज्झाणं**–धर्मध्यान, **पमादरहिदो त्ति**–प्रमाद–रहित, **होदि**–होता है, **त्ति**–यह, **जिणुद्दिट्ठं**–जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो ऐसा, **ण हु**–नहीं, **मण्णइ**–मानता है, **सो**–वह, **हु**–निश्चय से, **कुद्दिट्ठी**–कुदृष्टि/मिथ्यादृष्टि है।

अर्थ–वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में प्रमाद-रहित धर्मध्यान होता है-यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो ऐसा नहीं मानता है, वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि है।

उक्तं च–भरहे दुस्सम काले धम्मज्झाणं हवइ साहुस्स।
तं अप्प सहाव सहिदे ण हु भण्णई सो वि अण्णाणी।।76।। मो. पा.
अज्जवि तिरयण सुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं।
लोयत्तिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदि जंति।।77।। मो. पा.

अशुभ और शुभ भावों का फल

असुहादो णिरयाऊ, सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ।
दुह-सुहभावं जाणदु, जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा।।५७।।

सान्वय अर्थ–असुहादो–अशुभ भावों से, **णिरयाऊ**–नरक आयु, **दु**–और, **सुहभावादो**–शुभ भावों से, **सग्गसुहमाओ**–स्वर्ग-सुख और स्वर्ग आयु मिलती है, अतः, **दुहसुहभावं**–दुःख-सुख भावों को, **जाणदु**–जानो और इनमें, **ते**–तुम्हें, **जं**–जो, **रुच्चेइ**–अच्छा लगे, **तं**–उसे, **कुज्जा**–करो।

अर्थ–अशुभ भावों से नरकायु और शुभ भावों से स्वर्ग-सुख और स्वर्गायु (मिलती है), अतः दुःख-सुख भावों को जानो और तुम्हें जो अच्छा लगे, उसे करो।

अशुभ भाव के कारण

हिंसादिसु कोहादिसु, मिच्छाणाणेसु पक्खवादेसु।
मच्छरिएसु मदेसु दुरहिणिवेसेसु असुह-लेस्सेसु।।५८।।

विकहादिसु रुद्दट्टज्झाणेसु असुयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु य, जो वट्टदि असुहभावो सो।।५९।।

सान्वय अर्थ-हिंसादिसु-हिंसादि में, **कोहादिसु**-क्रोधादि में, **मिच्छाणाणेसु**-मिथ्याज्ञान में, **पक्खवाएसु**-पक्षपात में, **मच्छरिएसु**-मात्सर्य में, **मदेसु**-मदों में, **दुरहिणिवेसेसु**-दुरभिनिवेशों में, **असुहलेस्सेसु**-अशुभ

लेश्याओं में, **विकहादिसु-** विकथाओं में, **रुद्दट्टज्झाणेसु-**रौद्र-आर्त ध्यानों में, **असुयगेसु-**ईर्ष्या में, **दंडेसु-**असंयमों में, **सल्लेसु-**शल्योंमें, **य-**और, **गारवेसु-**मान-बढ़ाई में, **जो वट्टदि-**जो वर्तन होता है, **सो-**वह, **असुहभावो-**अशुभभाव है।

अर्थ-हिंसादि (पापों), क्रोधादि (कषायों), मिथ्याज्ञान, पक्षपात, मात्सर्य, मदों, दुरभिनिवेशों, अशुभ लेश्याओं, विकथाओं, आर्त-रौद्र ध्यानों, ईर्ष्या, असंयमों, शल्यों और मान-बढ़ाई में जो वर्तन होता है; वह अशुभ भाव है।

शुभभाव का लक्षण

दव्वत्थिकाय छप्पण, तच्च-पयत्थेसु सत्त-णवगेसु।
बंधण-मोक्खे तक्कारणरूवे बासाणुवेक्खे।।६०।।

रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयादिसद्धम्मे।
इच्चेवमाइगे जो, वट्टदि सो होइ सुहभावो।।६१।।

सान्वय अर्थ-छप्पण दव्वत्थिकाय-छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, **सत्त-णवगेसु तच्च-पयत्थेसु-**सात तत्त्व, नौ पदार्थ, **बंधण-मोक्खे-**बन्ध और मोक्ष, **तक्कारणरूवे-**उसके कारणरूप, **वारसाणुवेक्खे-**बारह अनुप्रेक्षाओं, **रयणत्तयस्सरूवे-**रत्नत्रय-स्वरूप, **अज्जाकम्मे-**आर्यकर्म, **दयादिसद्धम्मे-**दया आदि सद्धर्म, **इच्चेवमाइगे-**इत्यादि में, **जो वट्टदि-**जो वर्तन होता है, **सो-**वह, **सुहभावो-**शुभभाव, **होइ-**होता है।

अर्थ-छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, बन्ध और मोक्ष, उसके (मोक्ष के) कारणरूप बारह अनुप्रेक्षा, रत्नत्रय स्वरूप, आर्यकर्म, दया आदि सद्धर्म इत्यादि में जो वर्तन होता है, वह शुभभाव होता है।

सम्यक्त्व से सुगति होती है

सम्मत्तगुणाइ सुगदि, मिच्छादो होदि दुग्गदी णियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा, जं रुच्चदि तं कुज्जाहो।।६२।।

सान्वय अर्थ-सम्मत्तगुणाइ-सम्यक्त्व गुण से, **णियमा-**नियम से, **सुगदि-**सुगति और, **मिच्छादो-**मिथ्यात्व से, **दुग्गदी-**दुर्गति, **होदि-**होती

है-**इदि**-यह, **जाण**-जान, **इह**-यहाँ, **बहुणा किं**-अधिक कहने से क्या ? **जं**-जो, **रुच्चदि**-अच्छा लगे, **तं**-वह, **कुज्जाहो**-करो।

अर्थ-सम्यक्त्वगुण से नियम से सुगति और मिथ्यात्व से दुर्गति होती है-यह जान लो। यहाँ अधिक कहने से क्या लाभ है ? जो तुझे अच्छा लगे, वह करो।

मोह नष्ट किये बिना संसार से पार नहीं होता

मोह ण छिज्जइ अप्पा, दारुणकम्मं करेइ बहुवारं।
ण हु पावइ भवतीरं, किं बहुदुक्खं वहेइ मूढमदी।।६३।।

सान्वय अर्थ-अप्पा-यह आत्मा, **मोह**-मोह को, **छिद्दइ ण**-नष्ट नहीं करता है, **दारुणकम्मं**-दारुण कर्म-व्रत उपवासादि, **बहुवारं**-अनेक बार, **करेइ**-करता है, **हु**-निश्चय से वह, **भवतीरं**-संसार-समुद्र का किनारा, **ण पावइ**-नहीं पाता, फिर, **मूढमदी**-यह मूर्ख, **बहुदुक्खं**-अनेक दु:ख, **किं वहेइ**-क्यों उठाता है ?

अर्थ-यह आत्मा मोह को नष्ट नहीं करता है और कठोर कर्म (व्रत उपवासादि) अनेक बार करता है। निश्चय ही यह संसार (समुद्र) का किनारा नहीं पाता, (फिर) यह मूर्ख अनेक दु:ख क्यों उठाता है ?

बहिरात्मा के व्रताचरणादि निष्फल हैं

धरियउ बाहिरलिंगं, परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हि।
करियउ किरिया-कम्मं, मरियउ जम्मियउ बहिरप्प जीवो।।६४।।

सान्वय अर्थ-बहिरप्प जीवो-बहिरात्मा जीव, **बाहिरलिंगं**-बाह्य लिंग/द्रव्यलिंग को, **धरियउ**-धारणकर, **बाहिरक्खसोक्खं हि**-बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही, **परिहरियउ**-छोड़कर, **किरियाकम्मं**-क्रियाकाण्ड-व्रताचरणादि, **करियउ**-करता हुआ, **जम्मियउ मरियउ**-जन्म-मरण करता रहता है।

अर्थ-बहिरात्मा जीव बाह्यलिंग (द्रव्यलिंग-मुनिवेश) धारणकर, बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही छोड़कर क्रियाकाण्ड (बाह्य व्रताचरणादि) करता हुआ जन्म-मरण करता रहता है (अर्थात् एक सम्यग्दर्शन के बिना सब निष्फल है)।

मिथ्यात्व के कारण मोक्ष-सुख नहीं मिलता

मोक्ख-णिमित्तं दुक्खं, वहेइ परलोयदिट्ठि तणुदंडी।
मिच्छाभाव ण छिज्जइ, किं पावइ मोक्खसोक्खं हि ?।।६५।।

सान्वय अर्थ–परलोयदिट्ठि–परलोक पर दृष्टि रखने वाला (परलोक में सुखों की अभिलाषा करने वाला), **तणुदंडी**–अनेक कायक्लेश सहन करने वाला (मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा), **मोक्खणिमित्तं**–मोक्ष पाने के निमित्त, **दुक्खं**–दुःख, **वहेइ**–सहन करता है; किन्तु वह, **मिच्छाभाव**–मिथ्यात्व-भाव को, **ण छिज्जइ**–नष्ट नहीं करता, तब वह, **किं**–क्या, **हि**–निश्चय से/वस्तुतः, **मोक्ख-सोक्खं**–मोक्ष-सुख को, **पावइ**–प्राप्त करता (कर सकता) है ? अर्थात् नहीं कर सकता।

अर्थ–परलोक पर दृष्टि रखने वाला (परलोक में सुखों की अभिलाषा करने वाला), अनेक काय-क्लेश सहन करने वाला (मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा) मोक्ष पाने के निमित्त दुःख सहन करता है, (किन्तु वह) मिथ्यात्वभाव को नष्ट नहीं करता, (तब वह) क्या निश्चय से (वस्तुतः) मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है ?

कषाय के नाश से कर्मों का नाश

ण हु दंडदि कोहादिं, देहं दंडदि कहं खवदि कम्मं।
सप्पो किं मुवदि तहा, वम्मीए मारदे लोए।।६६।

सान्वय अर्थ–बहिरात्मा **कोहादि**–क्रोधादि को, **ण हु**–न हीं, **दंडदि**–दण्ड देता, निग्रह करता, अपितु, **देहं**–देह को, **दंडदि**–दण्ड देता है, तब वह, **कम्मं**–कर्मों को, **कहं**–किस प्रकार, **खवदि**–नष्ट कर सकता है ? **तहा**– जैसे, **लोए**–लोक में, **वम्मीए**–वामी (साँप के बिल को), **मारदे**–मारने पर, नष्ट करने पर, **किं**–क्या, **सप्पो**–सर्प, **मुवदि**–मरता है ?

अर्थ–(बहिरात्मा) क्रोधादि को दण्ड नहीं देता (निग्रह नहीं करता), देह को दण्ड देता है। (तब वह) कर्मों को किस प्रकार नष्ट कर सकता है? जैसे लोक में वामी (साँप के बिल) को मारने पर (नष्ट करने पर) क्या कभी साँप मरता है?

संयम उपशम-भाव से होता है

उवसम-तव-भावजुदो, णाणी सो ताव संजदो होइ।
णाणी कसायवसगो, असंजदो होइ सो ताव।।६७।।

सान्वय अर्थ–णाणी–ज्ञानी, **उवसम–तव–भावजुदो**–उपशम और तपभाव से युक्त है, **सो**–वह, **ताव**–तब, **संजदो**–संयमी, **होइ**–है; **णाणी**–ज्ञानी, **कसायवसगो**– जब कषाय के वशीभूत रहता है, **ताव**–तब, **सो**–वह, **असंजदो**–असयंमी, **होइ**–होता है/रहता है।

अर्थ–ज्ञानी (जब) उपशम और तपभाव से युक्त रहता है, तभी वह संयमी है; (किन्तु) जब वह कषाय के वशीभूत रहता है, तब असंयमी रहता है।

विशेष–कषायों की मंदता, परिणामों में सरलता, सहजता इच्छाओं व इन्द्रियों का निरोध ही संयमी की पहचान है।

मात्र ज्ञान से कर्म-क्षय नहीं होता

णाणी खवेदि कम्मं, णाण-बलेणेदि बोल्लदे अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्जमहं, जाणे इदि किं णस्सदे वाही।।६८।।

सान्वय अर्थ–णाणी–ज्ञानी, **णाणबलेण**–ज्ञान की शक्ति से, **कम्मं**–कर्मों का, **खवेदि**–क्षय करता है, **इदि**–इस प्रकार, **अण्णाणी**–अज्ञानी, **बोल्लदे**–कहता है, जैसे, **अहं**–मैं, **भेसज्जं**–औषधि, **जाणे**–जानता हूँ, **इदि**–इतने कहने मात्र से **किं**–क्या, **वेज्जो**–वैद्य कहीं, **वाही**–व्याधि को, **णस्सदे**–नष्ट कर देता है ?

अर्थ–''ज्ञानी ज्ञान की शक्ति से कर्मों का क्षय करता है, इस प्रकार अज्ञानी कहता है, (जैसे) ''मैं औषधि जानता हूँ'' इतना कहने मात्र से (क्या) वैद्य व्याधि को नष्ट कर देता है ?

विशेष–उक्तं च–

शास्त्राण्यधीत्यापि भवंति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान् स पुरुषः विद्वान।
सुचिंतितं चौषध-मातुराणां, न नाम मात्रेण करोत्यरोगम्।।

कर्म-नाश का क्रमिक उपाय

पुव्वं सेवइ मिच्छा-मल-सोहण-हेदु सम्म-भेसज्जं।

पच्छा सेवइ कम्मामय-णासण-चरिय-भेसज्जं।।६९।।

सान्वय अर्थ-पुव्वं-पहले, **मिच्छामल-सोहण-हेदु-सम्म-भेसज्जं**-मिथ्यारूपी मल के शोधन की कारण सम्यक्त्वरूपी औषधि का, **सेवइ**-सेवन किया जाता है, **पच्छा**-पश्चात्, **कम्मामयणासणचरिय-भेसज्जं**- कर्मरूपी व्याधि का नाश करने के लिये चारित्ररूपी औषधि का, **सेवइ**-सेवन किया जाता है।

अर्थ-पहले मिथ्यात्वरूपी मल के शोधन की कारणभूत सम्यक्त्वरूपी औषधि का सेवन किया जाता है, पश्चात् कर्मरूपी व्याधि का नाश करने के लिये चारित्ररूपी औषधि का सेवन किया जाता है।

अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी का महात्म्य

अण्णणीदो विसय-विरत्तादो होइ सय-सहस्स-गुणो।
णाणी कसाय-विरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं।।७०।।

सान्वय अर्थ-विसय-विरत्तादो-विषयों से विरक्त, **अण्णाणीदो**-अज्ञानी की अपेक्षा, **विसयासत्तो**-विषयों में आसक्त, किन्तु, **कसायविरदो**-कषाय से विरक्त, **णाणी**-ज्ञानी, **सय-सहस्स-गुणो**-लाख गुना फल, **होदि**-होता है/प्राप्त करता है, **जिणुद्दिट्ठं**-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ-विषयों से विरक्त अज्ञानी की अपेक्षा विषयों में आसक्त (किन्तु) कषायों से विरक्त ज्ञानी लाख गुना (फल) प्राप्त करता है-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

विशेष-यहाँ आचार्य भगवन कुन्द-कुन्द स्वामी का अज्ञानी से आशय मिथ्यादृष्टि से है, क्योंकि वह अनंत संसार का बंधक है।

वैराग्यहीन त्याग का निषेध

विणओ भत्तिविहीणो महिलाणं रोदणं विणा णेहं।
चागो वेरग्ग विणा, एदेदो वारिआ भणिदा।।७१।।

सान्वय अर्थ-भत्तिविहीणो-भक्ति के बिना, **विणओ**-विनय, **णेहं विणा**-स्नेह के बिना, **महिलाणं**-महिलाओं का, **रोदणं**-रुदन और, **वेरग्ग विणा**-वैराग्य के बिना, **चागो**-त्याग, **एदेदो**-ये, **वारिआ**-(निषेध) प्रतिषिद्ध,

भणिदा–कहे गये हैं।

अर्थ–भक्तिविहीन विनय, स्नेह के बिना महिलाओं का रुदन (और) वैराग्य के बिना त्याग–ये प्रतिषिद्ध कहे गये हैं।

विशेष–श्रद्धा भक्ति से रहित विनय, स्नेह रहित रुदन निष्फल है उसी तरह वैराग्य रहित त्याग व्यर्थ है।

संयमहीन मुनि कुछ नहीं पाता

सुहडो सूरत्त विणा, महिला सोहग्ग-रहिद परिसोहा।
वेरग्ग-णाण-संजम-हीणा खवणा ण किं पि लब्भंते।।७२।।

सान्वय अर्थ–सूरत्त विणा–शूरता के बिना, **सुहडो**–योद्धा, **सोहग्ग–रहिद**–सौभाग्य–रहित, **महिला परिसोहा**–महिला की शोभा, **वेरग्ग–णाण–संजम हीणा**–वैराग्य–ज्ञान और संयम से रहित, **खवणा**–क्षपक/मुनि, **किं पि**–कुछ भी, **ण**–नहीं, **लब्भंते**–प्राप्त करते।

अर्थ–शूरता के बिना योद्धा, सौभाग्यरहित स्त्रियों की शोभा और वैराग्य, ज्ञान, संयम से हीन मुनि कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

विशेष–सुभट की शोभा अस्त्र से नहीं शूरवीरता से है, महिला की शोभा श्रृंगार से नहीं पति है, उसी प्रकार मोक्षमार्गी (मुनि) की शोभा मात्र दिगम्बरत्व से नहीं वैराग्य, ज्ञान, तप, संयमादि से है।

अज्ञानी को सुख नहीं मिलता

वत्थू-समग्गो मूढो, लोही लब्भइ फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेवं।।७३।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **वत्थु–समग्गो**–समस्त पदार्थों से युक्त, **मूढो**–मूर्ख, **लोही**–लोभी मनुष्य, **पच्छा**–बाद में, **फलं**–फल, **लब्भइ**–पाता है, **तहा**–उसी प्रकार, **जो**–जो, **विसया–सत्तो**–विषयासक्त, **अण्णाणी**–अज्ञानी है–वह, **चेवं लहइ** (पीछे) फल पाता है।

अर्थ–जैसे समस्त पदार्थों से युक्त (समस्त पदार्थ रहने पर भी) मूर्ख लोभी मनुष्य बाद में फल पाता है (जीवन में सुख नहीं भोग पाता), वैसे ही जो

विषयासक्त अज्ञानी है, वह पीछे फल पाता है (जीवन में सुख नहीं भोग पाता)।

सुपात्रदान और विषयों के त्याग का फल समान है

वत्थु-समग्गो णाणी, सुपत्त-दाणी फलं जहा लहइ।
णाण-समग्गो विसय-परिचत्तो लहइ तहा चेव।।७४।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **वत्थु–समग्गो**–समस्त पदार्थों से युक्त, **सुपत्त–दाणी**–सुपात्रों को दान देनेवाला, **णाणी**–ज्ञानी, **फलं**–फल, **लहइ**–पाता है, **तहा**–वैसे, **चेव**–ही, **विसयपरिचत्तो**–विषयों का त्यागी, **णाण–समग्गो**–ज्ञान से युक्त ज्ञानी, **लहइ**–फल पाता है।

अर्थ–जैसे समस्त पदार्थों से युक्त (समस्त पदार्थ रहने पर भी) सुपात्रों को दान देनेवाला ज्ञानी फल प्राप्त करता है, वैसा ही फल विषयों का त्यागी ज्ञानी प्राप्त करता है।

विशेष–समस्त पदार्थों को प्राप्त करके भी दान न देने वाला एवं ज्ञान को प्राप्त करके विषयों का त्याग न करने वाले के समान मूर्ख है। ऐसे दोनों व्यक्तियों का धन व ज्ञान व्यर्थ है।

रत्नत्रय से लोभ का विरोध

भू-महिला-कणयादि-लोहाहि-विसहरं कहं पि हवे।
सम्मत्त-णाण-वेरग्गोसहमंतेण जिणुद्दिट्ठं।।७५।।

सान्वय अर्थ–भू–जमीन, **महिला**–स्त्री, **कणयादि**–स्वर्ण आदि के, **लोहाहि विसहरं**–लोभरूपी सर्प और विषधर सर्प को, **कहं पि हवे**–चाहे वह सर्प कैसा ही हो, **सम्मत्त–णाण–वेरग्गोसह मंतेण**–सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्यरूपी औषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है, **जिणुद्दिट्ठं**–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–भूमि, स्त्री, स्वर्ण आदि के लोभरूपी सर्प हों और चाहे विषधर सर्प हो, वह सर्प कैसा ही हो, सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य (सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र) रूपी औषधि और मन्त्र से (वश में किया जा सकता है), ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

मुनि-दीक्षा से पूर्व योगों का निग्रह आवश्यक है

पुव्वं जो पंचिंदिय, तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय-मुंडाओ।
पच्छा सिर मुंडाओ, सिवगइ-पह-णायगो होइ।।७६।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **पुव्वं**–पहले, **पंचिंदिय–तणु–मण–वचि–हत्थ–पाय–मुंडाओ**–पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ, पैरों को मूंडता है/वश में करता है, **पच्छा**–पश्चात्, **सिर मुंडाओ**–सिर मुँडाता है, केशलुंचन करता है, वह, **सिवगइ पहणायगो**–मोक्षमार्ग का नेता, **होइ**–होता है।

अर्थ–जो मनुष्य पहले पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ और पैरों को मूंडता है (वश में करता है) और पश्चात् सिर मुंडाता है (केशलुंचन करके मुनि–दीक्षा लेता है), वह मोक्षमार्ग का नेता होता है।

विशेष–''चित्रं जैनेश्वरी दीक्षा स्वैराचार विरोधिनी'' अर्थात् जैनेश्वरी दीक्षा–स्वच्छंद प्रवृत्ति की विरोधी है, इसमें आगमानुकूल प्रवृत्ति ही विधेय है।

भक्ति के बिना सुगति नहीं

पदि-भत्ति-विहीण सदी, भिच्चो जिण-समय-भत्ति-हीण जइणो।
गुरु-भत्ति-हीण सिस्सो, दुग्गदि-मग्गाणुलग्गओ णियदं।।७७।।

सान्वय अर्थ–पदि–भत्ति–विहीण–स्वामी की भक्ति से विहीन, **सदी**–सती स्त्री और, **भिच्चो**–भृत्य, **जिण–समय–भत्ति–हीण**–जिनेन्द्रदेव और शास्त्र की भक्ति से विहीन, **जइणो**–जैन, **गुरुभत्तिहीण**–गुरु की भक्ति से विहीन, **सिस्सो**–शिष्य, **णियदं**–नियम से, **दुग्गदिमग्गाणुलग्गओ**–दुर्गति के मार्ग में संलग्न है।

अर्थ–स्वामी की भक्ति से विहीन सती और भृत्य, जिनेन्द्रदेव और शास्त्र की भक्ति से विहीन जैन और गुरु की भक्ति से विहीन शिष्य नियम से दुर्गति के मार्ग में संलग्न है।

विशेष–जिनेन्द्र भगवान के मार्ग पर चलने वाला ही जैन हो सकता है, जिन मार्ग का विरोधी नहीं।

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

गुरु-भत्ति-विहीणाणं, सिस्साणं सव्व-संग-विरदाणं।
ऊसर-खेत्ते ववियं सुवीयसमं जाण सव्वणुट्ठाणं।।७८।।

सान्वय अर्थ–सव्व–संग–विरदाणं–सब परिग्रह से रहित, किन्तु, **गुरु–भत्ति–विहीणाणं**–गुरु–भक्ति से विहीन, **सिस्साणं**–शिष्यों के, **सव्वणुट्ठाणं**–सभी अनुष्ठान–जप तप व्रत आदि, **ऊसरखेत्ते**–ऊसर खेत में, **ववियं**–बोये हुए, **सुवीयसमं**–उत्तम बीज के समान **जाण**–जानो।

अर्थ–समस्त परिग्रह (बाह्य और आभ्यंतर) से रहित, किन्तु गुरु–भक्ति से विहीन शिष्यों के सभी अनुष्ठान (जप तप व्रत आदि) ऊसर खेत में बोये हुए उत्तम बीज के समान (व्यर्थ) जानो। गुरु का आशय यहाँ लौकिक गुरु से नहीं सच्चे गुरु से है।

विशेष– ''गुरु भक्ति सति मुक्त्यै'' गुरु भक्ति मुक्ति दायिनी होती है।

यह तन विष की बेलड़ी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

रज्जं पहाण-हीणं, पदिहीणं देस-गाम-रट्ठ-बलं।
गुरुभत्ति-हीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं।।७९।।

सान्वय अर्थ–पहाणहीणं–प्रधान/राजा से विहीन, **रज्जं**–राज्य, **पदिहीणं**–स्वामी से विहीन, **देसगामरट्ठबल**–देश, ग्राम, राष्ट्र और सेना, **गुरुभत्तिहीण**–गुरु–भक्ति से विहीन, **सिस्सा**–शिष्यों के, **सव्वं**–समस्त, **अणुट्ठणं**–अनुष्ठान, **णस्सदे**–नष्ट हो जाते हैं।

अर्थ–प्रधान (राजा) से विहीन राज्य, स्वामी–विहीन देश, ग्राम, राष्ट्र और सेना तथा गुरु–भक्ति से विहीन शिष्यों के समस्त अनुष्ठान नष्ट हो जाते हैं।

विशेष–कल्याण के इच्छुक भव्यों को नित्य गुरु उपासना व सेवाभक्ति अवश्य ही करनी चाहिए।

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

सम्माण विणा रुइ भत्ति विणा दाणं दया विणा धम्मो।
गुरु-भत्ति विणा तव-गुण-चारित्तं णिप्फलं जाण।।८०।।

सान्वय अर्थ-सम्माण विणा-सम्मान-आदरभाव के बिना, **रूइ**-रूचि/प्रेम, **भत्ति विणा**-भक्ति के बिना, **दाणं**-दान, **दया विणा**-दया के बिना, **धम्मो**-धर्म, **गुरु-भत्ति विणा**-गुरु भक्ति के बिना, **तव-गुण-चारित्तं**-तप, गुण, चारित्र, **णिप्फलं**-निष्फल, **जाण**-जानो।

अर्थ-सम्मान (आदरभाव) के बिना रूचि (प्रेम), भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म और गुरु भक्ति के बिना तप, गुण, चारित्र निष्फल जानो।

विशेष- विषयाशा वशातीतो निरारम्भोपरिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते।।10।। र.श्रा.
गुरु द्रुहां गुणः को वा कृतध्यानां न नश्यति।
विद्यापि विद्युदाभा स्यादमूलस्य कुतो स्थितिः।। क्ष.चू.

हेयोपादेय-विवेक की आवश्यकता

हीणादाण-वियार-विहीणादो बाहिरक्ख-सोक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं, किं मोक्ख ण दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं।।८१।।

सान्वय अर्थ-हीणादाण-वियार-विहीणादो-निन्द्य और ग्राह्य का विचार न होने से, **हि**-निश्चय से, **बाहिरक्ख सोक्खं**-बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही सुख मानते हैं, **किं तजियं**-क्या त्याज्य है और, **किं भजियं**- क्या उपादेय है तथा, **किं मोक्खं**-मोक्ष क्या है? उसे, **ण दिट्ठं**-नहीं देखा जाना है, **जिणुद्दिट्ठं**-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ-जो जीव निन्द्य और ग्राह्य का विचार न होने से निश्चय से बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही (सुख मानते हैं)। उन्होंने क्या त्याज्य है, क्या ग्राह्य है, मोक्ष क्या है? इत्यादि के स्वरूप को नहीं जाना है-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

आत्मरुचि कर्म-क्षय करती है

कायकिलेसुववासं, दुद्धर-तवयरण-कारणं जाण।
तं णियसुद्धप्परुई, परिपुण्णं चेदि कम्म-णिम्मूलं।।८२।।

सान्वय अर्थ-कायकिलेसुववासं-कायक्लेश और उपवास, **दुद्धरतवयरण-कारणं**-कठोर तपश्चरण के कारण है, **जाण**-ऐसा जानो, **च**-और, **तं**-वे, **णियसुद्धप्परुई**-निज शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर **परिपुण्णं**-समस्त, **कम्मणिम्मूलं**- कर्मों के नाश के कारण होते हैं, **चेदि**-ऐसा जानो।

अर्थ-कायक्लेश और उपवास कठोर तपश्चरण के कारण होते हैं-ऐसा जानो और निज शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर वे समस्त कर्मों के नाश के कारण होते हैं-ऐसा जानो।

विशेष-उक्तं च-

किं काहदि बणवासो काय किलेसो विचित उववासो।
अज्झयण मौण पहुदी समदा रहियस्स साहुस्स।।

आत्मज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है

कम्म ण खवेइ परबम्ह ण जाणदि सम्म-उम्मुक्को।
अत्थ ण तत्थ ण जीवो, लिंगं घेत्तूण किं करेदि।।८३।।

सान्वय अर्थ-जो-जो, **परबम्ह**-आत्मा परमात्मा को, **ण**-नहीं, **जाणदि**-जानता है, और, **सम्मउम्मुक्को**-सम्यक्त्व से रहित है, वह, **कम्म**-कर्मों का, **ण खवेदि**-क्षय नहीं करता, **जीवो**-ऐसा जीव, **अत्थ ण तत्थ ण**-न यहाँ का है, न वहाँ का है वह, **लिंगं**-लिंग को, **घेत्तूण**-ग्रहण करके, **किं करेदि**-क्या करता है?

अर्थ-जो परब्रह्म (आत्मा, परमात्मा) को नहीं जानता और सम्यक्त्व से रहित है, वह कर्मों का नाश नहीं करता है। ऐसा जीव न यहाँ का है, न वहाँ का है। वह लिंग (बाह्यवेश) को धारण करके क्या करता है?

आत्मज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है

अप्पाणं पि ण पेच्छदि, ण मुणदि ण वि सद्दहदि ण भावेदि।
बहुदुक्ख - भारमूलं, लिंगं घेत्तूण किं करेदि।।८४।।

सान्वय अर्थ-जो साधु **अप्पाणं**-आत्मा को, **पि**-भी, **ण पेच्छदि**-नहीं

देखता है, **ण मुणदि**–न उसका मनन करता है, **ण वि सद्दहदि**– न ही श्रद्धान करता है, **ण भावेदि**–न भावना करता है, तो वह, **बहुदुक्खभारमूलं**–अत्यन्त दु:ख–भार के कारण, **लिंगं**–बाह्य वेश को, **घेंत्तूण**–धारण करके, **किं करेदि**–क्या करता है?

अर्थ–जो साधु अपनी आत्मा को भी नहीं देखता है, न उसका मनन करता है, न ही श्रद्धान करता है, न भावना करता है, तो वह अत्यन्त दु:ख–भार के कारणस्वरूप बाह्य वेश को धारण करके क्या करता है?

विशेष–णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसार सायरे ममई।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिण भावण वज्जिओ सुइरं।।68।।भा.पा.

आत्मज्ञान के बिना दु:ख है

जाव ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव।
तेण अणंत-सुहाणं, अप्पाणं भावए जोई।।८५।।

सान्वय अर्थ–जाव–जब तक, **अप्पा**–आत्मा, **अप्पाणं**–आत्मा को, **ण जाणदि**–नहीं जानता है, **ताव**–तब तक, **अप्पणो**–आत्मा को, **दुक्खं**–दु:ख है, **तेण**–इसलिए, **जोई**–योगी/साधु को, **अणंतसुहाणं**–अनन्तसुखस्वभावी, **अप्पाणं**–आत्मा की, **भावए**–भावना करनी चाहिये।

अर्थ–जब तक आत्मा को (अपने आपको) नहीं जानता है, तब तक आत्मा को दु:ख है, इसलिए योगी (साधु) को अनन्तसुखस्वभावी आत्मा की भावना करनी चाहिये।

आत्मस्वरुप प्राप्त होने पर सम्यक्त्व होता है

णियतच्चुवलद्धि विणा, सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुवलद्धि विणा, णिव्वाणं णत्थि णियमेण।।८६।।

सान्वय अर्थ–णियतच्चुवलद्धि विणा–निजतत्व/आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना, **णियमेण**–नियम से, **सम्मत्तुवलद्धि**–सम्यक्त्व की प्राप्ति, **णत्थि**–नहीं होती, **सम्मत्तुवलद्धि विणा**–सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना, **णियमेण**–नियम से, **णिव्वाणं**–निर्वाण, **णत्थि**–नहीं होता।

अर्थ–निजतत्व (आत्मस्वरूप) की प्राप्ति के बिना नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। सम्यक्त्व की उपलब्धि के बिना नियम से निर्वाण नहीं होता।

विशेष–निज आत्मा के ज्ञान के बिना सम्यक्त्व/रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए पर पदार्थों से ममत्व छोड़ कर निजात्म तत्व को ग्रहण करो।

ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं

सालविहीणो राओ, दाण-दया-धम्मरहिद-गिहिसोहा।
णाणविहीण तवो वि य, जीव विणा देहसोहं ण।।८७।।

सान्वय अर्थ–सालविहीणो–दुर्ग के बिना, **राओ**–राजा की, **दाणदर्या धम्मरहिद**–दान, दया, धर्म से रहित, **गिहिसोहा**–गृहस्थ की शोभा नहीं होती, **य**– और, **णाणविहीण तवो वि**–ज्ञान से रहित तप की भी, और, **जीव विणा**–जीव के बिना, **देहसोहं**–देह की शोभा, **ण**–नहीं होती।

अर्थ–दुर्ग के बिना राजा की और दान, दया, धर्म के बिना गृहस्थ की शोभा नहीं होती। ज्ञान से रहित तप की और जीव के बिना देह की शोभा नहीं होती।

विशेष–जिस प्रकार दुर्ग से रहित राजा का दान, पूजा, दया, धर्म से रहित श्रावक का जीवन व्यर्थ है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान रहित तपस्वी का जीवन व प्राण बिना देह व्यर्थ है।

परिग्रही साधु दु:ख पाता है

मक्खी सिलिम्मि पडिदो, मुवदि जहा तह परिग्गहे पडिदो।
लोही मूढो खवणो, कायकिलेसेसु अण्णाणी।।८८।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **सिलिम्मि**–श्लेष्मा में, **पडिदो**–गिरी हुई, **मक्खी**–मक्खी, **मुवदि**–मर जाती है, **तह**–उसी प्रकार, **परिग्गहे**–परिग्रह में, **पडिदो**–पड़ा हुआ, **लोही**–लोभी, **मूढो**–मूढ, **अण्णाणी**–अज्ञानी, **खवणो**–साधु, **कायकिलेसेसु**–काय–क्लेश में मरता है।

अर्थ–जैसे श्लेष्मा में गिरी हुई मक्खी (दु:ख भोगती हुई) मर जाती है, उसी प्रकार परिग्रह में पड़ा हुआ (आसक्त) लोभी, मूढ, अज्ञानी साधु कायक्लेश में मरता है।

विशेष–मक्खी पड़ी शहद में, पंख गये लिपटाय।
तड़प–तड़प प्राणनि तजै, लालच बुरी बलाय।।

परिग्रही साधु सु:ख पाता है

णाणब्भास-विहीणो सपरं तच्चं ण जाणदे किं पि।
झाणं तस्स ण होइ हु, ताव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं।।८९।।

सान्वय अर्थ–णाणब्भास विहीणो–ज्ञानाभ्यास से विहीन–जीव, **सपरं**–स्व और पर, **तच्चं**–तत्व को, **किं पि**–कुछ भी, **ण**–नहीं, **जाणदे**–जानता है, **तस्स**–उसके, **हु**–निश्चय से, **झाणं**–ध्यान, **ण होइ**–नहीं होता है, **ताव**–तब तक, **कम्मं**–कर्मों को, **ण खवेइ**–नष्ट नहीं करता, **ण हु मोक्खं**–न ही उसको मोक्ष होता है।

अर्थ–ज्ञानाभ्यास के बिना स्व–पर की पहचान नहीं होती। स्व–पर की पहचान के बिना ध्यान नहीं होता। ध्यान के बिना कर्मों का नाश नहीं होता। कर्मों का नाश किये बिना मोक्ष नहीं होता।

स्वाध्याय ही ध्यान है

अज्झयणमेव झाणं, पंचेंदिय-णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमकाले, पवयणसारब्भासमेव कुज्जाहो।।९०।।

सान्वय अर्थ–अज्झयणमेव–शास्त्रों का अध्ययन ही, **झाणं**–ध्यान है, **पंचेंदियणिग्गहं**–पंचेन्द्रियों का निग्रह, **कसायं पि**–और कषायों का भी निग्रह (शमन) होता है, **तत्तो**–इसलिए, **पंचमकाले**–इस पंचमकाल में, **पवयणसारब्भासमेव**–प्रवचनसार–जिनागम का ही अभ्यास, **कुज्जाहो**–करना चाहिये/करो।

अर्थ–जिनागम का अध्ययन ही ध्यान है। उसी से पंचेन्द्रियों का और कषायों का भी निग्रह होता है, इसलिए इस पंचमकाल में प्रवचनसार (जिनागम) का ही अभ्यास करना चाहिये।

ज्ञान ही धर्मध्यान है

पावारंभ-णिवित्ती पुण्णारंभे पउत्ति-करणं पि।
णाणं धम्मज्झाणं, जिणभणिदं सव्वजीवाणं।।९१।।

सान्वय अर्थ–पावारंभ–णिवित्ती–पापारंभ–हिंसादि कार्य से निवृत्ति और, **पुण्णारंभे**–पुण्यकार्यों में, **पउत्ति–करणं पि**–प्रवृत्ति करने का कारण भी, **णाणं**–ज्ञान ही है, इसलिए ज्ञान को ही, **सव्वजीवाणं**–सब जीवों के लिए, **धम्मज्झाणं**–धर्मध्यान, **जिणभणिदं**–जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–पापारंभ (हिंसादि कार्य) से निवृत्ति और पुण्यकार्यों में प्रवृत्ति का कारण ज्ञान ही है। (इसलिए ज्ञान को ही) सब जीवों के लिए जिनेन्द्रदेव ने धर्मध्यान कहा है।

विशेष–बिना ज्ञान के प्रयोजन भूत तत्वों/पदार्थों, द्रव्यों का बोध नहीं होता, बिना सम्यग्ज्ञान के धर्म ध्यान भी नहीं होता।

श्रुतज्ञान के बिना सम्यक्तप नहीं

सुदणाणब्भासं जो ण कुणदि सम्मं ण होदि तवयरणं।
कुव्वंतो मूढमदी, संसारसुहाणुरत्तो सो।।९२।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **सुदणाणब्भासं**–श्रुतज्ञान/जिनागम का अभ्यास, **ण कुणदि**–नहीं करता है, उसके, **तवयरणं**–तपश्चरण, **सम्मं**–सम्यक्, **ण होदि**–नहीं होता है, **कुव्वंतो**–श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण करने वाला, **सो मूढमदी**–वह अज्ञानी, **संसारसुहाणुरत्तो**–सांसारिक–सुखों में अनुरक्त है।

अर्थ–जो जिनागम का अभ्यास नहीं करता है, उसके सम्यक् तपश्चरण नहीं होता है। (श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण करने वाला) वह अज्ञानी सांसारिक–सुखों में अनुरक्त है।

मुनि तत्व-विचार में लीन रहते हैं

तच्च-वियारणसीलो, मोक्ख-पहाराहणा-सहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा-पसंगओ होइ मुणिरायो।।९३।।

सान्वय अर्थ–मुणिरायो–मुनिराज, **तच्च–वियारणसीलो**–तत्त्व की विचारणा करने वाले, **मोक्ख–पहाराहणा–सहाव जुदो**–मोक्ष–पथ की आराधना के स्वभाववाले और, **अणवरयं**–निरन्तर, **धम्म–कहापसंगओ**–धर्मकथाओं के परिचायक, **होइ**–होते हैं।

अर्थ–मुनिराज तत्त्व की विचारणा करने वाले, मोक्षपथ की आराधना के स्वभाववाले और निरन्तर धर्मकथाओं के परिचायक हैं।

मुनि की धर्ममय प्रवृत्ति

विकहादि-विप्पमुक्को, आहाकम्मादि-विरहिदो णाणी।
धम्मुद्देसण-कुसलो, अणुपेहा-भावणा-जुदो जोई।।९४।।

सान्वय अर्थ–जोई–योगी–मुनिराज, **विकहादि–विप्पमुक्को**–विकथा आदि से पूर्णतः मुक्त होता है, **आहाकम्मादि–विरहिदो**–अधःकर्म आदि से रहित होता है, **णाणी**–सम्यक्ज्ञानी होता है, **धम्मुद्देसण–कुसलो**–धर्मोपदेश देने में कुशल होता है, और, **अणुपेहा–भावणा–जुदो**–बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निरत रहता है।

अर्थ–योगी (मुनि) विकथा आदि से पूर्णतः मुक्त होते हैं, अधःकर्म आदि से रहित होता है, सम्यक्ज्ञानी होता है, धर्मोपदेश देने में कुशल होता है और बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निरत रहता है।

मुनि का स्वरूप

णिंदा-वंचण-दूरो, परिसह-उवसग्ग-दुक्ख-सहमाणो।
सुह-झाणज्झयण-रदो, गद-संगो होदि मुणिराओ।।९५।।

सान्वय अर्थ–मुणिराओ–मुनिराज, **णिंदा–वंचण–दूरो**–निन्दा और वंचना से दूर रहते हैं, **परिसह–उवसग्ग–दुक्ख–सहमाणो**–परीषह, उपसर्ग और दुःखों को सहन करते हैं, **सुह–झाणज्झयण–रदो**–शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं, एवं, **गय–संगो**–अन्तःबाह्य परिग्रह से रहित, **होइ**–होते हैं।

अर्थ–मुनिराज निन्दा और वंचना से दूर रहते हैं, परीषह, उपसर्ग और

दु:खों को सहन करते हैं, शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं और अन्त:बाह्य परिग्रह से रहित होते हैं।

मुनि योगी होता है

अवियप्पो णिद्दंदो, णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मल-सहावजुदो, जोई सो होइ मुणिराओ।।९६।।

सान्वय अर्थ–जो **अवियप्पो**–विकल्परहित, **णिद्दंदो**–निर्द्वन्द्व, **णिम्मोहो**–मोहरहित, **णिक्कलंकओ**–निष्कलंक, **णियदो**–नियत, **णिम्मतसहावजुदो**–निर्मल स्वभाववाला और, **जोई**–योगी होता है, **सो**–वह, **मुणराओ**–मुनिराज, **होइ**–होता है।

अर्थ–जो विकल्परहित, निर्द्वन्द्व, मोह रहित, निष्कलंक, नियत, निर्मल स्वभाव वाला और योगी होता है, वह मुनिराज होता है।

मिथ्यातप से मुक्ति नहीं मिलती

तिव्वं कायकिलेसं, कुव्वंतो मिच्छभाव-संजुत्तो।
सव्वण्हुवदेसे सो, णिव्वाणसुहं ण गच्छेदि।।९७।।

सान्वय अर्थ–जो **तिव्वं**–तीव्र, **कायकिलेसं**–कायक्लेश, **कुव्वंतो**–करता हुआ भी यदि, **मिच्छभावसंजुत्तो**–मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो **सो**–वह, **सव्व्ण्हुवदेसे**–सर्वज्ञदेव के उपदेश में, **णिव्वाणसुहं**–मोक्ष-सुख को, **ण गच्छेदि**–प्राप्त नहीं करता है।

अर्थ–जो तीव्र कायक्लेश करता हुआ भी (यदि) मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो वह सर्वज्ञदेव के उपदेश में (रहकर भी) मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं करता है।

रागी को आत्म-दर्शन नहीं होता

रायादि-मल-जुदाणं, णियप्परूवं ण दिस्सदे किं पि।
समलादरिसे रूवं, ण दिस्सदे जह तहा णेयं।।९८।।

सान्वय अर्थ–रायादि-मल-जुदाणं–रागादि-मल से युक्त जीवों को, **णियप्परूवं**–अपना आत्मस्वरूप, **किं पि**–कुछ भी, **ण दिस्सदे**–दिखायी

नहीं देता, **जह**–जैसे, **समलादरिसे**–मलिन दर्पण में, **रूवं**–रूप, **ण दिस्सदे**–दिखायी नहीं देता, **तहा**–वैसा ही, **णेयं**–समझना चाहिये।

अर्थ–रागादि-मल से युक्त जीवों को अपना आत्मस्वरूप कुछ भी दिखायी नहीं देता। जैसे मलिन दर्पण में रूप दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार (इसे) समझना चाहिये।

विशेष–असंयमी अवस्था में कदापि शुद्धात्मा की अनुभूति/शुद्धोपयोग या निश्चय सम्यक्त्वादि की प्राप्ति नहीं होती।

असंयमी साधु दीर्घ-संसारी होता है

दंडत्तय सल्लत्तय, मंडिदमाणो असूयगो साहू।
भंडण-जायणसीलो, हिंडदि सो दीहसंसारे।।९९।।

सान्वय अर्थ–जो, **साहू**–साधु, **दंडत्तय**–तीन दण्ड-मन, वचन, काय को वश में नहीं करता, **सल्लत्तय**–तीन शल्य-माया, मिथ्यात्व निदान-इनसे युक्त, **मंडिदमाणो**–अभिमानी, **असूयगो**–ईर्ष्यालु और, **भंडण जायणसीलो**–कलह करने वाला, याचना करने वाला है, **सो**–वह, **दीहसंसारे**–दीर्घ-संसार में, **हिंडदि**–भ्रमण करता है।

अर्थ–जो साधु तीन दण्ड (मन, वचन, काय) को वश में नहीं रखता, तीन शल्य (माया, मिथ्यात्व, निदान) से युक्त, अभिमानी, ईर्ष्यालु, कलह करने वाला और याचना करने वाला है, वह दीर्घ-संसार में भ्रमण करता है।

सम्यक्त्वहीन साधु की पहचान

देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसाय-संजुत्ता।
आदसहावे सुत्ता, ते साहू सम्म-परिचत्ता।।१००।।

सान्वय अर्थ-देहादिसु अणुरत्ता–देह आदि में अनुरक्त, **विसयासत्ता**–विषयों में आसक्त, **कसायसंजुत्ता**–कषाय से युक्त, **आदसहावे सुत्ता**–आत्म-स्वभाव में सोये हुए प्रमादी है, **ते साहू**–(वे) ऐसे साधु, **सम्मपरिचत्ता**–सम्यक्त्व से रहित हैं।

अर्थ–देह आदि में अनुरक्त, विषयोंमें आसक्त, कषाय से युक्त,

आत्म-स्वभाव में सोये हुए (प्रमादी)-ऐसे साधु सम्यक्त्व से रहित है।

जैन धर्म के विराधक साधुओं के लक्षण

आरंभे धणधण्णे, उवयरणे कंखिया तहासूया।
वय-गुण-सील-विहीणा, कसाय-कलहप्पिया मुहरा।।१०१।।

संघविरोह-कुसीला, सच्छंदा रहिद-गुरुकुला मूढा।
रायादि-सेवया ते, जिणधम्म-विराहयासाहू।।१०२।।

सान्वय अर्थ-जो **साहू**-साधु, **आरंभे**-आरम्भ में, **धणधण्णे**-धन धान्य में, **उवयरणे**-उपकरणोंमें, **कंखिया**-आकांक्षा रखते हैं, **तहा**-तथा, **असूया**-ईर्ष्यालु हैं, **वय-गुण-सील-विहीणा**-व्रत, गुण, शील से रहित हैं, **कसाय-कलहप्पिया**- कषायप्रिय और कलहप्रिय हैं, **मुहरा**-वाचाल हैं, **संघविरोह-कुसीला**-संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं, **सच्छंदा**-स्वच्छन्द हैं, **रहिद-गुरुकुला**-गुरु के समीप नहीं करते हैं, **मूढा**-अज्ञानी हैं, **रायादि-सेवया**-राजा आदि की सेवा रहते हैं, **ते**-वे साधु, **जिणधम्म-विराहया**-जैनधर्म के विराधक हैं।

अर्थ-जो साधु आरम्भ, धन-धान्य, उपकरणों में आकांक्षा रखते हैं तथा ईर्ष्यालु हैं, व्रत, गुण, शील से रहित हैं, कषायप्रिय और कलहप्रिय हैं, वाचाल हैं, संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं, स्वच्छन्द हैं, गुरु के समीप नहीं रहते हैं, अज्ञानी हैं और राजा आदि की सेवा करते हैं, वे साधु जैनधर्म के विराधक हैं।

साधुओं के लिए दूषण योग्य कार्य

जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं।
धण-धण्ण-परिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।।१०३।।

सान्वय अर्थ-जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं-ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र विद्या द्वारा उपजीविका चलाना, **वायवस्स ववहारं**-वातविकार का व्यापार अर्थात् भूत-प्रेत की झाड़-फूँक का काम करना, **धण-धण्ण-परिग्गहणं**-धन-धान्य का प्रतिग्रहण करना-ये काम, **समणाणं**-श्रमण मुनियों के लिए, **दूसणं**-दोष, **होइ**-होते हैं।

अर्थ–ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र–विद्या द्वारा उपजीविका चलाना, भूत–प्रेत की झाड़–फूँक का व्यापार करना, धन–धान्य का प्रतिग्रहण करना–ये काम श्रमण मुनियों के लिए दूषण–स्वरूप हैं।

सम्यक्त्वहीन साधु

जे पावारंभरदा, कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार-पउरा, ते साहू सम्म-उम्मुक्का।।१०४।।

सान्वय अर्थ–जे–जो, **पावारंभरदा**–पाप और आरम्भ में लगे हैं, **कसायजुत्ता**–कषाययुक्त हैं, **परिग्गहासत्ता**–परिग्रह में आसक्त हैं, **लोयववहारपउरा**–लोक–व्यवहार में बहुत निमग्न हैं, **ते साहू**–वे साधु, **सम्मउम्मुक्का**–सम्यक्त्व से रहित हैं।

अर्थ–जो साधु पाप और आरम्भ में लगे हुये हैं, कषाय–युक्त हैं, परिग्रह में आसक्त हैं, और लोक–व्यवहार में बहुत निमग्न हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

विशेष–उक्तं च–

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पाव मोहिद मदी तिरिक्ख जोणीण सो समणो।।5।। लि. पा.

सम्यक्त्वहीन साधु

ण सहंति इदरदप्पं, थुवंति अप्पाणमप्प - माहप्पं।
जिव्ह-णिमित्तं कुणंति, कज्जं ते साहु सम्म-उम्मुक्का।।१०५।।

सान्वय अर्थ–(जो) **साहु**–साधु, **इदरदप्पं**–दूसरों के बहड़प्पन को, **ण सहंति**–नहीं सहतेहैं, **अप्पाणं**–अपनी और, **अप्पमाहप्पं**–अपने माहात्म्य की, **थुवंति**–प्रशंसा करते रहते हैं, **जिव्हणिमित्तं**–जिह्वा के लिए, **कज्जं**–कार्य, **कुणंति**–करते हैं, **वे**– वे साधु, **सम्म–उम्मुक्का**–सम्यक्त्व–रहित हैं।

अर्थ–जो साधु दूसरों के बड़प्पन को सहन नहीं करते हैं, अपनी और अपने माहात्म्य की प्रशंसा करते हैं और जिह्वा के लिए (सुस्वादु भोजनादि के लिए) कार्य करते हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

पापी धर्मात्मा से द्वेष करता है

चम्मट्ठि-मंस-लव-लुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह तह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो।।१०६।।

सान्वय अर्थ–जह–जैसे, **चम्मट्ठि–मंसलवलुद्धो**–चर्म, अस्थि और मांस खण्ड का लोभी, **सुणहो**–कुत्ता, **मुणिं**–मुनि को, **दिट्ठा**–देखकर, **गज्जए**–भौंकता है, **तह**–उसी प्रकार, **पाविट्ठो**–जो पापी है, **सो**–वह, **सगीयट्ठो**–स्वार्थवश, **धम्मिट्ठं**–धर्मात्मा को, **दिट्ठा**–देखकर भौंकता है, कलह करता है।

अर्थ–जैसे चर्म, अस्थि और मांस-खण्ड का लोभी कुत्ता मुनि को देखकर भौंकता है, इसी प्रकार जो पापी है, वह स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर कलह करता है।

मोक्षमार्ग में रत साधु

भुंजेइ जहालाहं, लहेइ जइ णाण-संजम-णिमित्तं।
झाणज्झयण-णिमित्तं, अणयारो मेक्ख-मग्गरओ।।१०७।।

सान्वय अर्थ–जइ–यदि, **जहालाहं**–यथालाभ/जो प्राप्त हो गया, **भुंजेइ**–भोजन करता है, **णाण–संजम–णिमित्तं**–ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए तथा, **झाणज्झयण–णिमित्तं**–ध्यान और अध्ययन के निमित्त, **लहेइ**–ग्रहण करता है, **अणयारो**–वह साधु, **मोक्ख–मग्गरओ**–मोक्षमार्ग में रत है।

अर्थ–जो यदि यथालाभ (जो प्राप्त हो गया) भोजन (आहार) ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए तथा ध्यान और अध्ययन के निमित्त करता है, वह मोक्षमार्ग में रत है।

विशेष–आहार ग्रहण के 6 कारण निम्न हैं–1. संयम रक्षा, 2. शरीर स्थिति, 3. क्षुधा नाश, 4. वैय्यावृत्ति, 5. स्वाध्याय, 6. ध्यान (मूला.)।

अथवा

1. क्षुधा शमन हेतु, 2. वेदना शमन हेतु, 3. षडावश्यक क्रिया पालन हेतु, 4. संयम की रक्षा हेतु, 5. प्राण रक्षा हेतु, 6. धर्म रक्षार्थ (मूला.)

मुनि-चर्या के भेद

उदरग्गियसमण-मक्खमक्खण-गोयार-सब्भपूरण-भमरं।
णाऊण तप्पयारे, णिच्चेवं भुंजदे भिक्खू।।१०८।।

सान्वय अर्थ–उदरग्गियसमण–मक्खमक्खण–गोयार–सब्भपूरण–भमरं–उदराग्निशमन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी, **तप्पयारे**–मुनिचर्या के इन भेदों को, **णाहूद**–जानकर, **भिक्खू**–भिक्षु/साधु, **णिच्चेवं**–नित्य ही, **भुंजदे**–आहार ग्रहण करता है।

अर्थ–उदराग्निशमन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी–मुनिचर्या के इन भेदों को जानकर साधु नित्य ही आहार ग्रहण करता है।

विधि–आचार्य देव ने इस गाथा में मुनियों के आहार की पाँच विधियाँ बतायी हैं–

1. उदराग्निशमन–जितने आहार से उदर की अग्नि शान्त हो जाए, उतना ही आहार लेना।

2. अक्षम्रक्षण–जैसे गाड़ी को चलाने के लिए उसकी धुरी पर तेल लगाया जाता है, उसी प्रकार इस शरीर को मोक्षमार्ग में चलाने के लिए आहार लेना।

3. गोचरी–जैसे गाय की दृष्टि चारे पर रहती है, चारा डालने वाले की सुन्दरता या आभूषणों पर नहीं, इसी प्रकार मुनि की दृष्टि आहार पर रहतीहै, देने वाले की गरीबी–अमीरी पर नहीं।

4. श्वभ्रपूरण–इस पेट को सरस–नीरस चाहे जैसे आहार से भर लेना, जैसे गड्ढा कूड़ा–मिट्टी से भरते हैं।

5. भ्रामरी–जैसे भ्रमर फूलों को कष्ट न देते हुए रस–ग्रहण करता है, ऐसे ही गृहस्थ को कष्ट न देते हुए आहार ग्रहण करना।

धर्म-साधना के लिए मुनि आहार लेते हैं

रस-रुहिर-मंस-मेदट्ठि-सुकिल-मल-मुत्त-पूय-किमिबहुलं।
दुग्गंधमसुइ - चम्ममयमणिच्चमचेदणं पडणं।।१०९।।

बहुदुक्ख-भायणं कम्म-कारणं भिण्णमप्पणो देहं।
तं देहं धम्माणुट्ठाण-कारणं चेदि पोसदे भिक्खू।।११०।

सान्वय अर्थ-देहं-(यह) शरीर, **रस-रुहिर-मंस-मेदट्ठि-सुकिल-मल-मुत्त-पूय-किमिबहुलं**-रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ है, **दुग्गंधं**-दुर्गन्धियुक्त, **असुइ**-अपवित्र, **चम्ममयं**-चर्ममय, **अणिच्चं**-अनित्य, **अचेदणं**-अचेतन, **पडणं**-पतनशील/नाशवान, **बहुदुक्खभायणं**-अनेक प्रकार के दु:खों का पात्र, **कम्मकारणं**-कर्मास्रव का कारण, **अप्पणो भिण्णं**-आत्मा से भिन्न हैं, **तं देहं**-उस देह को, **धम्माणुट्ठाणकारणं**- धर्मानुष्ठान का कारण है, **चेदि**-यह मानकर, **भिक्खू**-भिक्षु (साधु), **पोसदे**-पालन-पोषण करता है।

अर्थ-यह शरीर रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ, दुर्गन्धियुक्त, अपवित्र, चर्ममय, अनित्य, अचेतन, नाशवान, अनेक प्रकार के दु:खों का पात्र, कर्मास्रव का कारण और आत्मा से भिन्न है। (यह देह) धर्मानुष्ठान का कारण है-यह मानकर साधु उस देह का पालन-पोषण करता है। अर्थात् आहार ग्रहण करता है।

मुनि राज शरीर-पुष्टि के लिए आहार नहीं लेते

संजम-तव-झाणज्झयण-विणाणए गिण्हदे पडिगहणं।
वज्जइ गिण्हदि भिक्खू, ण सक्कदे वज्जिदु दुक्खं।।१११।।

सान्वय अर्थ-भिक्खू-साधु, **संजम-तव-झाणज्झयण-विणाणए**-संयम, तप, ध्यान, अध्ययन और विज्ञान के लिए, **पडिगहणं**-प्रतिग्रहण/आहार, **गिण्हदे**-ग्रहण करता है, वह यदि, **वज्जइ**-इन कारणों को छोड़ता है और, **गिण्हदि**-शरीर-पुष्टि के लिए आहार ग्रहण करता है, तो वह, **दुक्खं**-दु:ख को, **वज्जिदुं**-छोड़ने में, **ण सक्कदे**-समर्थ नहीं होता।

अर्थ-साधुजन संयम, तप, ध्यान, अध्ययन और विज्ञान (वीतराग-विज्ञान) के लिए आहार ग्रहण करते हैं। जो साधु इन कारणों को छोड़ता है और शरीर-पुष्टि के लिए आहार ग्रहण करता है, वह दु:ख को छोड़ने में समर्थ नहीं होता।

मलिन परिणामों से आहार लेने वाला साधु नहीं है

कोहेण य कलहेण य, जायण-सीलेण संकिलेसेण।
रुद्देण य रोसेण य, भुंजदि किं विंतरो भिक्खू।।११२।।

सान्वय अर्थ–जो साधु, **कोहेण य**–क्रोध से, **कलहेण य**–कलह करके, **जायण–सीलेण**–याचना करके, **संकिलेसेण**–संक्लेश परिणामों से, **रुद्देण य**–रौद्र परिणामों से, **रोसेण य**–और रुष्ट होकर, **भुंजदि**–आहार ग्रहण करता है–वह, **किं भिक्खू**–क्या साधु है ? वह तो, **विंतरो**–व्यन्तर है।

अर्थ–(जो साधु) क्रोध से, कलह करके, याचना करके, संक्लिष्ट परिणामों से, रौद्र परिणामों से और रुष्ट होकर आहार ग्रहण करता है, वह क्या साधु है ? वह तो व्यन्तर है।

मुनि शुद्ध-आहार ग्रहण करता है

दिव्वुत्तरण-सरिच्छं, जाणिच्चाहो धरेइ जइ सुद्धो।
तत्तायसपिंड-समं, भिक्खू ! तुह पाणिगद-पिंडं।।११३।।

सान्वय अर्थ–अहो भिक्खू !–हे मुने !, **जइ**–यदि, **तुह पाणिगद–पिंडं**–तेरे हाथ पर रखा हुआ आहार, **तत्तायसपिंड–समं**–तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान, **सुद्धो**–शुद्ध है, तो उसे, **दिव्वुत्तरण सरिच्छं**–दिव्य नौका के समान, **जाणिच्चा**–जानकर, **धरेइ**–ग्रहण कर।

अर्थ–हे मुने ! यदि तेरे हाथ पर रखा हुआ आहार तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान शुद्ध है, तो उसे दिव्य नौका के समान जानकर ग्रहण कर।

विशेष– छियालीस दोष बिना, सुकुल श्रावक तने घर असन को।
लें तप बढ़ावन हेतु नहिं तन पोषते तजि रसन को।।छ.ढा.

पात्र अनेक प्रकार के हैं

अविरद-देस-महव्वय, आगमरुइणं वियार-तच्चण्हं।
पत्तंतरं सहस्सं, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।११४।।

सान्वय अर्थ–जिणवरिंदेहिं–जिनेन्द्रदेव ने, **अविरद–देस–महव्वय**–अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती श्रावक, महाव्रती मुनि, **आगमरुइणं**–आगम में

रुचि रखने वाले, और **वियारतच्चण्हं**–तत्त्व-विचारकों के भेद से, **पत्तंतरं सहस्सं**–हजारों प्रकार के पात्र, **णिद्दिट्ठं**–बताये हैं।

अर्थ–जिनेन्द्रदेव ने अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती श्रावक, महाव्रती मुनि, आगम में रुचि रखने वाले और तत्त्व-विचारकों के भेद से हजारों प्रकार के पात्र बताये हैं।

विशेष–तत्प्रति प्रीति चिंतेन येन वार्तामपि श्रुता।
निश्चितं स भवेद् भव्य भावि निर्वाण भाजनः।।पं.पं.वि.

अर्थात्–जो आत्मा की, जिनवाणी की वार्ता को भी प्रीति पूर्वक सुनने वाला है निश्चित ही उसे भव्य जानना चाहिए, वह भविष्य में निर्वाण प्राप्त करेगा इसलिए पात्रों में उसकी गिनती की है।

मुनि उत्तम पात्र है

उवसम-णिरीह-झाणज्झयणाइ महागुणा जहा दिट्ठा।
जेसिं ते मुणिणाहा, उत्तमपत्ता तहा भणिया।।११५।।

सान्वय अर्थ–जेसिं–जिन मुनियों में, **उवसम–णिरीह–झाणज्झय–णाइ**–उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि, **महागुणा**–महान् गुण, **जहा**–जैसे, **दिट्ठा**–देखे गये, **तहा**–उसी प्रकार, **ते मुणिणाहा**–वे मुनिराज, **उत्तमपत्ता**–उत्तम पात्र, **भणिया**–कहे गये हैं।

अर्थ–जिन मुनियों में उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि महान् गुण जैसे देखे गये, उसी प्रकार वे मुनिराज 'उत्तम पात्र' कहे गये हैं।

भावार्थ–इन गुणों की जैसी-जैसी वृद्धि होती जाती है, वैसी-वैसी पात्रता बढ़ती जाती है। आ० भगवन सोमदेव सूरि ने भी यशस्तिलक चम्पू में इस प्रकार से कहा है, विस्तार से वहाँ से देखें।

आत्मज्ञान के बिना तप संसार का कारण है

ण वि जाणइ जिण-सिद्ध-सरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणइतवं, सो हिंडदि दीहसंसारे।।११६।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **जिण–सिद्ध–सरूवं**–जिन-अरिहन्त और सिद्ध

का स्वरूप, **तह**–तथा, **णियप्पाणं**–अपनी आत्मा को, **वि**–भी, **तिविहेण**–तीन भेद से बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, **ण जाणदि**–नहीं जानता है, और, **तिव्वं**–तीव्र, **तवं**–तप, **कुणइ**–करता है, **सो**–वह, **दीहसंसारे**–दीर्घ संसार में, **हिंडदि**–भ्रमण करता है।

अर्थ–जो अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप तथा (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) तीन प्रकार के भेद से अपनी आत्मा को भी नहीं जानता, वह दीर्घ संसार में भ्रमण करता है।

पात्र-विशेष के लक्षण

दंसणसुद्धो धम्मज्झाणरदो संगवज्जिदो णिस्सल्लो।
पत्तविसेसो भणियो, सो गुणहीणो दु विवरीदो।।११७।।

सम्माइगुणविसेसं, पत्तविसेसं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
तं जाणिऊण देइ सुदाणं जो सो हु मोक्खरओ।।११८।।

सान्वय अर्थ–**दंसणसुद्धो**–निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले, **धम्मज्झाणरदो**–धर्मध्यान में रत, **संगवज्जिदो**–परिग्रह-रहित, **णिस्सलो**–तीन शल्यों से रहित व्यक्ति को, **पत्तविसेसो**–विशेष पात्र, **भणियो**–कहा गयाहै, **गुणहीणो**–जो इन गुणों से रहित है, **सो दु**–वह तो, **विवरीदो**–विपरीत/अपात्र है।

सम्माइगुणविसेसं–जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं, उसे, **जिणेहि**–जिनेन्द्रदेव ने, **पत्तविसेसं**–विशेष पात्र, **णिद्दिट्ठं**–कहा है, **जो**–जो व्यक्ति, **तं**–उस पात्र-विशेष को, **जाणिऊण**–जानकर, **सुदाणं**–सुदान देता है, **सो हु मोक्खरओ**–मोक्ष मार्ग में रत है।

अर्थ–निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले, धर्मध्यान में रत, परिग्रह-रहित और तीन शल्यों (माया, मिथ्यात्व, निदान) से रहित विशेष पात्र कहे गये हैं। जो इन गुणों से रहित है, वह तो विपरीत (अपात्र) है।

जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं, उसे जिनेन्द्रदेव ने विशेषपात्र कहा है। जो व्यक्ति उस पात्र-विशेष को जानकर सुदान देता है, वह निश्चय से मोक्षमार्ग में रत है।

रत्नत्रय दो प्रकार का है

णिच्छय-ववहार-सरूवं जो रयणत्तयं ण जाणदि सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।।११९।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **णिच्छय–ववहार–सरूवं**–निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले, **रयणत्तयं**–रत्नत्रय को, **ण जाणदि**–नहीं जानता है, **सो**–वह, **जं**–जो, **कीरइ**–करता है, **तं सव्वं**–वह सब, **मिच्छारूवं**–मिथ्यारूप है, **जिणुद्दिट्ठं**–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ–जो निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो करता है, वह सब मिथ्यारूप है–यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और तप भव-बीज हैं

किं जाणिऊण सयलं, तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्म-विसोहि-विहीणं णाण-तवं जाण भवबीयं।।१२०।।

सान्वय अर्थ–सयलं–सम्पूर्ण, **तच्चं**–तत्त्व को, **जाणिऊण**–जानकर भी, **किं**–क्या लाभ है ? **च**–और, **बहुलं**–बहुत, **तवं**–तप, **किच्चा**–करके भी, **किं**– क्या लाभ है ? **सम्मविसोहिविहीणं**–सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन, **णाणतवं**–ज्ञान और तप को, **भववीयं**–संसार का बीज, **जाण**–जानो।

अर्थ–सम्पूर्ण तत्त्व को जानकर (भी) क्या (लाभ है ?) और बहुत तप करके (भी) क्या (लाभ है ?) सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन ज्ञान और तप को संसार का बीज (कारण) जानो।

विशेष–सम्यक्त्व से रहित ज्ञान, तप, संयम व्यर्थ है, संसार का ही कारण है, अतः सम्यक्त्व पूर्वक ज्ञान, तप ही मोक्ष मार्ग में साधक हैं।

सम्यक्त्व के बिना चारित्र संसार का कारण है

वय-गुण-सील-परीसहजयं च चरियं तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं, सम्म विणा जाण भवबीयं।।१२१।।

सान्वय अर्थ–वय–गुण–सील–परीसहजयं–व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, **चरियं**–चारित्र, **तवं**–तप, **छडावसयं**–षट् आवश्यक, **च**–तथा,

झाणज्झयणं–ध्यान और अध्ययन–इन, **सव्वं**–सबको, **सम्मविणा**–सम्यक्त्व के बिना, **भवबीयं**–भव–बीज, **जाण**–जानो।

अर्थ–व्रत, गुण, शील, परीषहजय, चारित्र, तप, षट् आवश्यक ध्यान और अध्ययन इनसबको सम्यक्त्व के बिना भव–बीज (संसार का कारण) जानो।

चाह से परलोक बिगड़ता है

खाई-पूया-लाहं, सक्काराइं किमिच्छिसे जोई !
इच्छसि जइ परलोगं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं।।१२२।।

सान्वय अर्थ–जोई–हे योगी ! **जइ**–यदि, **परलोयं**–परलोक को, **इच्छसि**–चाहता है, तो **खाई–पूया–लाहं**–ख्याति, पूजा, लाभ, **सक्काराइं**–सत्कार आदि, **किमिच्छसे**– क्यों चाहता है ? **तेहिं**–उनसे, **किं**–क्या, **तुज्झ**–तुझे, **परलोयं**–परलोक अर्थात् अच्छा लोक मिलेगा ?

अर्थ–हे योगी ! यदि तू परलोक (सद्गति) चाहता है, तो ख्याति, पूजा, लाभ, सत्कार आदि क्यों चाहता है, इनसे तुझे क्या परलोक (अच्छा लोक) मिलेगा ?

आत्मरुचि से निर्वाण होता है

कम्मादविहाव - सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।
णिय सुद्धप्पा रुच्चइ, तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।।१२३।।

सान्वय अर्थ–जो–जो मुनि, **कम्मादविहाव–सहावगुणं**–कर्मजनित विभावभाव तथा उनके नाश से आत्मा के स्वभाविक गुणों को, **भावेण**–भावपूर्वक, **भाविऊण**–मनन करके, **णियसुद्धप्पा**–निज शुद्धात्मा में, **रुच्चदि**–रुचि करता है, **तस्स य**–उसका, **णियमेण**–नियम से, **णिव्वाणं**–निर्वाण, **होइ**–होता है।

अर्थ–जो मुनि कर्मजनित विभाव–भाव (राग–द्वेष आदि) तथा (उनके नाश से) आत्मा के (क्षमादि) स्वाभाविक गुणों का भावपूर्वक मनन करके निज शुद्धात्मा में रुचि करता है, उसका नियम से निर्वाण होता है।

कर्मों से मुक्त जीव तत्वों को जानता है

मूलुत्तरुत्तरुत्तर, दव्वादो भावकम्मदो मुक्को।
आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेइ किं बहुणा।।१२४।।

सान्वय अर्थ–मूलुत्तरुत्तरुत्तर दव्वादो–मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म से एवं, **भावकम्मदो**–भावकर्म से, **मुक्को**–मुक्त जीव, **आसव–बंधण–संवर–णिज्जर**–आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा, **जाणेइ**–जानता है, **बहुणा**–बहुत कहने से, **किं**–क्या लाभ है?

अर्थ–कर्मों की मूल प्रकृतियाँ (ज्ञानावरणादि), उत्तर प्रकृतियाँ (मतिज्ञानावरणादि) और उत्तरोत्तर (अवग्रहादि) रूप द्रव्यकर्म से (तथा रागद्वेषादि) भावकर्म से मुक्त जीव आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा तत्त्वों को जानता है। बहुत कहने से क्या लाभ है ?

विषय-विरक्त मुनि मुक्त होता है

विसय-विरत्तो मुंचइ, विसयासत्तो ण मुंचए जोइ।
बहिरंतर-परमप्पाभेयं जाणहि किं बहुणा।।१२५।।

सान्वय अर्थ–विसय–विरत्तो–विषयों से विरक्त, **जोइ**–योगी, **मुंचइ**–कर्मों से छूटता है, **विसयासत्तो**–विषयों में आसक्त, **ण मुंचए**–नहीं छूटता। **बहिरंतर–परमप्पाभेयं**–आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा–इन तीन भेदों को, **जाणहि**–जानो, **बहुणा**–बहुत कहने से, **किं**–क्या लाभ है ?

अर्थ–विषयों से विरक्त योगी कर्मों से छूटता है, विषयों में आसक्त नहीं छूटता। आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा–इन तीन भेदों (के स्वरूप) को जानो। बहुत कहने से क्या लाभ है ?

बहिरात्मा का लक्षण

णियअप्प-णाण-झाणज्झयण-सुहामिय-रसायणं पाणं।
मोत्तूणक्खाणसुहं, जो भुंजइ सो हु बहिरप्पा।।१२६।।

सान्वय अर्थ–जो–जो मनुष्य, **णिय–अप्प–णाण–झाणज्झयण–सुहामिय–रसायणं पाणं**–अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और

सुखामृत रसायन का पान, **मोंत्तूण**–छोड़कर, **अक्खाणसुहं**–इन्द्रियों का सुख, **भुंजदि**–भोगता है, **सो**–वह, **हु**–निश्चय से, **बहिरप्पा**–बहिरात्मा है।

अर्थ–जो मनुष्य अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखरूपी अमृत–रसायन का पालन छोड़कर इन्द्रियों का सुख भोगता है, वह निश्चय से बहिरात्मा है।

इन्द्रिय-विषय दु:ख-परिणामी हैं

किंपायफलं पक्कं, विस-मिस्सिद-मोदगिंदवारुण-सोहं।
जिव्हसुहं दिट्ठिपियं, जह तह जाणक्ख-सोंक्खं पि।।१२७।।

सान्वय अर्थ–जह–जैसे, **पक्कं**–पका हुआ, **किंपायफलं**–किंपाक फल, **विस–मिस्सिद–मोदगिंद–वारुणसोहं**–विषमिश्रित मोदक, इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, **जिव्हसुहं**–जीभ को सुख देते हैं, **दिट्ठि–पियं**–देखने में भी प्रिय लगते हैं, **तह**–उसी प्रकार, **अक्ख–सोक्खं पि**–इन्द्रिय–सुखों को भी, **जाण**–जानो।

अर्थ–जैसे पका हुआ किंपाक फल, विषमिश्रित मोदक और इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, जीभ को भी सुख देते हैं, दृष्टि को भी प्रिय लगते हैं (किन्तु परिणाम में दुख:दायी होते हैं), उसी प्रकार इन्द्रिय–सुखों को भी जानो।

पर को निज मानने वाला बहिरात्मा है

देह-कलत्तं पुत्तं, मित्ताइ विहाव-चेदणारूवं।
अप्प-सरूवं भावइ, सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।१२८।।

सान्वय अर्थ–जो–जो मनुष्य, **देह–कलत्तं**–शरीर, स्त्री, **पुत्तं**–पुत्र, **मित्ताइ**–मित्र आदि को, **विहाव–चेदणारूवं**–विभाव चेतना रूप राग–द्वेष आदि को, **अप्पसरूवं**– आत्मस्वरूप, **भावइ**–भाता है, **सो चेव**–वही, **बहिरप्पा**–बहिरात्मा, **हवेइ**–होता है।

अर्थ–(जो मनुष्य) शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और विभाव चेतना (राग–द्वेष आदि वैभाविक परिणामों) को आत्मस्वरूप भाता है/मानता है, वही बहिरात्मा है।

विषयों में सुख मानने वाला बहिरात्मा है

इंदिय-विसय-सुहादिसु, मूढमइ रमइ ण लहइ तच्चं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतइ, सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।१२९।।

सान्वय अर्थ–मूढमइ–अज्ञानी जीव, **इंदिय–विसय–सुहादिसु**–इन्द्रिय–विषयों के सुख में, **रमइ**–रम जाता है, **बहुदुक्खं**–ये इन्द्रिय–विषय बहुत दु:खदायी हैं, **इदि**–यह, **ण चिंतइ**–विचार नहीं करता, वह, **तच्चं**–तत्त्व को, **ण लहइ**–प्राप्त नहीं करता, **सो चेव**–वही, **बहिरात्मा**–बहिरप्पा, **हवेइ**–होता है।

अर्थ–जो अज्ञानी जीव इन्द्रिय–विषयों के सुखों में रम जाता है। ये इन्द्रिय–विषय बहुत दु:खदायी हैं–इस बात का विचार नहीं करता है वह आत्म–तत्त्व को नहीं पाता, वही जीव बहिरात्मा होता है।

बहिरात्मा कौन है ?

जं जं अक्खाणसुहं, तं तं तिव्वं करेइ बहुदुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतइ, सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।१३०।।

सान्वय अर्थ–जं जं–जितने, **अक्खाणसुहं**–इन्द्रिय–सुख हैं, **तं तं**–वे सब, **अप्पाणं**–आत्मा को, **तिव्वं**–तीव्र, **बहुदुक्खं**–अनेक प्रकार के दु:ख, **करेइ**–देते हैं, **इदि**–इस प्रकार जो, **ण चिंतइ**–विचार नहीं करता, **सो चेव**–वही, **बहिरात्मा**–बहिरात्मा, **हवेइ**–होता है।

अर्थ–इन्द्रियों के जितने सुख हैं, वे सब आत्मा को अनेक प्रकार के तीव्र दु:ख देते हैं। इस बात का जो विचार नहीं करता, वही बहिरात्मा होता है।

बहिरात्मा की रुचि इन्द्रिय-विषयों में रहती है

जेसिं अमेज्झ-मज्झे, उप्पण्णाणं हवेइ तत्थ रुई।
तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय-विसएसु होइ मदी।।१३१।।

सान्वय अर्थ–जेसिं–जैसे, **अमेज्झ–मज्झे**–विष्टा में, **उप्पण्णाणं**–उत्पन्न हुये कीड़े की, **रुई**–रुचि, **तत्थ**–उसी विष्टा में, **हवेइ**–होती है, **तह**–उसी प्रकार, **बहिरप्पाणं**–बहिरात्मा की, **मदी**–बुद्धि, **बहिरिंदिय–विसएसु**–इन्द्रिय–विषयों में, **होइ**–होती है।

अर्थ–जैसे विष्टा से उत्पन्न हुए कीड़े की रुचि उसी विष्टा में होती है, उसी प्रकार बहिरात्मा की बुद्धि बाह्य इन्द्रिय-विषयों में होती है।

बहिरात्मा को विवेक नहीं होता

पूयसूय-रसाणाणं, खारामिय-भक्खभक्खणाणं पि।
मणुजाइ जहा मज्झे, बहिरप्पाणं तहा णेयं।।१३२।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **मणुजाइ**–मनुष्य जाति, **पूयसुय-रसाणाणं**–अपवित्र और खाने-योग्य रसों में, **खारामिय-भक्खभक्खणाणं पि**– क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के, **मज्झे**–मध्य विवेक नहीं करती, **तहा**–उसी प्रकार, **बहिरप्पाणं**–बहिरात्मा को, **णेयं**–जानना चाहिये।

अर्थ–जैसे मनुष्य-जाति अपवित्र (अखाद्य) और खाद्य रसों, क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के मध्य (विवेक नहीं करती), उसी प्रकार बहिरात्मा को जानना चाहिये (वह भी आत्मा और अनात्मा के मध्य विवेक नहीं करता)।

उत्तम अन्तरात्मा की पहचान

सिविणे वि ण भुंजदि विसयाइं देहादि-भिण्णभावमदी।
भुंजदि णियप्प रूवो, सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो।।१३३।।

सान्वय अर्थ–देहादिभिण्णभावमदी–जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानने वाला है, **सिविणे वि**–जो स्वप्न में भी, **विसयाइं**–विषयादि को, **ण भुञ्जदि**–नहीं भोगता है, **णियप्परूवो**–आत्मा के निज स्वरूप का, **भुंजदि**–अनुभव करता है, **दु**– और, **सिवसुहरत्तो**–शिव-सुख में लीन रहता है, **सो**–वह, **मज्झिमप्पो**–मध्यमात्मा-अन्तरात्मा होता है।

अर्थ–जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानता है, जो स्वप्न में भी विषयादि को नहीं भोगता है, जो आत्मा के निज स्वरूप का अनुभव करता है और शिव-सुख में लीन रहता है, वह उत्तम मध्यमात्मा (अन्तरात्मा) होता है।

अनादिकालीन वासना नहीं छूटती है

मल-मुत्त-घडव्व चिरंवासिय दुव्वासणं ण मुंचेइ।
पक्खालिय सम्मत्तजलो य णाणमियेण पुण्णो वि।।१३४।।

सान्वय अर्थ–यह जीव, **पक्खालिय सम्मत्तजलो**–सम्यक्त्व-रूपी जल से धोने से, **य**–और, **णाणमियेण**–ज्ञानामृत से, **पुण्णो वि**–पूर्ण होने पर भी, **चिरंवासिय**–चिरकाल से दुर्वासित, **मलमुत्तघडव्व**–मलमूत्र से भरे हुए घड़े के समान, **दुव्वासणं**–दुर्वासन को, **ण मुंचेइ**–नहीं छोड़ता है।

अर्थ–जैसे बहुत समय से दुर्गन्धित मल-मूत्र वाले घड़े से दुर्गन्ध नहीं छूटती है, उसी प्रकार सम्यक्त्वरूपी जल से धोने पर और ज्ञानामृत से पूर्ण होने पर भी अनादिकालीन दुर्वासना (आसानी से) नहीं छूटती है।

सम्यग्दृष्टि अनिच्छापूर्वक भोग भोगता है

सम्माइट्ठी णाणी, अक्खाणसुहं कहं पि अणुहवदि।
केणावि ण परिहरणं, वाहीण-विणासणट्ठं-भेसज्जं।।१३५।।

सान्वय अर्थ–सम्माइट्ठी–सम्यग्दृष्टि, **णाणी**–ज्ञानी, **कहं पि**–किसी प्रकार/अनिच्छापूर्वक, **अक्खाणसुहं**–इन्द्रियों के सुख का, **अणुहवदि**–अनुभव करता है, जैसे **वाहीण–विणासणट्ठं**–रोग दूर करने के लिए, **भेसज्जं**–कड़वी औषधि, **केणावि**–किसी के द्वारा, **ण परिहरणं**–नहीं छोड़ी जाती।

अर्थ–सम्यग्दृष्टि ज्ञानी किसी प्रकार (अनिच्छापूर्वक) इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है, जैसे रोग दूर करने के लिए कोई औषधि नहीं छोड़ता है (इच्छा न होने पर भी रोग दूर करने के लिए औषधि लेनी पड़ती है)।

अन्तरात्मा बनो, परमात्म-पद की भावना करो

किं बहुणा हो ! तजि बहिरप्प-सरूवाणि सयल-भावाणि।
भजि मज्झिम परमप्पा वत्थु-सरूवाणि भावाणि।।१३६।।

सान्वय अर्थ–किं बहुणा–अधिक कहने से क्या लाभ है, **हो**–हे भव्य ! **बहिरप्पसरूवाणि**–बहिरात्मस्वरूप, **सयलभावाणि**–समस्त भावों को, **तजि**–छोड़ और, **मज्जिमपरमप्पा**–मध्यमात्मा और परमात्मा के,

वत्थुसरूवाणि–यथार्थस्वरूप-सम्बन्धी, **भावाणि**–भावों को, **भजि**–भजो।

अर्थ–अधिक कहने से क्या लाभ है। (संक्षेप में) हे भव्य ! बहिरात्म-स्वरूप समस्त भावों को छोड़ और अन्तरात्मा तथा परमात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी भावों को भजो।

बहिरात्म-भाव दुःख के कारण हैं

चउगइ-संसारगमण-कारणभूयाणि दुक्ख-हेऊणि।
ताणि हवे बहिरप्पा, वत्थु-सरूवाणि भावाणि।।१३७।।

सान्वय अर्थ–बहिरप्पा–बहिरात्मा के, **वत्थु–सरूवाणि भावाणि**–वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं, **ताणि**–वे सब, **चउगइ–संसारगमण–कारणभूयाणि**–चतुर्गतिरूप संसार-परिभ्रमण के कारण हैं, और **दुक्खहेऊणि**–दुःख के कारण, **हवे**–होते हैं।

अर्थ–बहिरात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं, वे सब चतुर्गति-रूप संसार-परिभ्रमण और दुःख के कारण हैं।

अन्तरात्मा के भाव मोक्ष और पुण्य के कारण हैं

मोक्खगइ-गमण-कारणभूयाणि पसत्थ-पुण्ण-हेऊणि।
ताणि हवे दुविहप्पा, वत्थु-सरूवाणि भावाणि।।१३८।।

सान्वय अर्थ–दुविहप्पा–अन्तरात्मा और परमात्मा के, **वत्थु–सरूवाणि भावाणि**–वस्तु स्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं, **ताणि**–वे सब, **मोक्खगदि–गमण–कारणभूदाणि**–मोक्षगति में ले जाने के कारणभूत और, **पसत्थ–पुण्ण–हेदूणि**–प्रशस्त पुण्य के कारण, **हवे**–होते हैं।

अर्थ–अन्तरात्मा और परमात्मा के वस्तु स्वरूप सम्बन्धी जो भाव होता हैं, वे सब मोक्षगति में ले जाने और प्रशस्त पुण्य के कारण होते हैं।

स्व-परसमयज्ञ ही मोक्ष पाता है

दव्व-गुण-पज्जयेहिं जाणदि पर-सग-समयादि-विभेयं।
अप्पाणं जाणइ सो, सिव-गइ-पहणायगो होइ।।१३९।।

सान्वय अर्थ-जो-जो, **पर-सग-समयादि-विभेयं**-स्वसमय और परसमय आदि के भेद को, **दव्व-गुण-पज्जयेहिं**-द्रव्य-गुण-पर्याय से, **जाणदि**-जानता है, **सो**-वह, **अप्पाणं**-अपनी आत्मा को, **जाणदि**-जानता है, वही, **सिवगइपहणायगो**- शिवगति के मार्ग का नायक, **होदि**-होता है।

अर्थ-जो स्वसमय और परसमय आदि के भेद को द्रव्य-गुण-पर्यायों से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है। वह मोक्षमार्ग का नेता होता है।

केवल परमात्मा स्वसमय है

बहिरंतरप्पभेदं, परसमयं भण्णए जिणिंदेहिं।
परमप्पा सगसमयं, तब्भेयं जाण गुणठाणे।।१४०।।

सान्वय अर्थ-जिणिंदेहिं-जिनेन्द्र भगवान् ने, **बहिरंतरप्पभेदं**-बहिरात्मा और अन्तरात्मा इन भेदों को, **परसमयं**-परसमय, **भण्णए**-कहा है, **परमप्पा**-परमात्मा, **सगसमयं**-स्वसमय है, **तब्भेयं**-उनके भेद, **गुणठाणे**-गुणस्थानों की अपेक्षा, **जाण**-जानो।

अर्थ-जिनेन्द्र भगवान् ने बहिरात्मा और अन्तरात्मा को 'परसमय' कहा है और परमात्मा 'स्वसमय' है, उनके भेद गुणस्थानों की अपेक्षा जानो।

गुणस्थानों के अनुसार आत्मा का वर्गीकरण

मिस्सो त्ति बहिरप्पा, तरतमया तुरियं अंतरप्प जहण्णो।
संतो त्ति मज्झिमंतर खीणुत्तम परम जिणसिद्धा।।१४१।।

सान्वय अर्थ-मिस्सो-प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणस्थान वाले, **त्ति**-ये, **बहिरप्पा**-बहिरात्मा, **तरतमया**-विशुद्धि के तारतम्य की अपेक्षा से, **तुरियं**-चतुर्थ गुण स्थानवर्ती, **जहण्णो**-जघन्य, **अंतरप्प**-अन्तरात्मा हैं, **संतो त्ति**-पाँचवें से उपशान्त मोह/ग्यारहवें गुणस्थान तक, **मज्झिमंतर**-मध्यम अन्तरात्मा हैं, **खीणुत्तम**-क्षीणमोह/बारहवें गुणस्थान वाले उत्तम अन्तरात्मा हैं, **परमजिणसिद्धा**-जिन/तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध परमात्मा हैं।

अर्थ-मिश्र गुणस्थान पर्यन्त (प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान वाले) 'बहिरात्मा' हैं। ततमता से (क्रमशः विशुद्धि की ततमता से) चतुर्थ गुणस्थानवर्ती 'जघन्य अन्तरात्मा' हैं। पाँचवें से उपशान्तमोह (ग्यारहवें गुणस्थान) तक

'मध्यम अन्तरात्मा' हैं। क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थान वाले) 'उत्तम अन्तरात्मा' हैं। जिन (तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती) और सिद्ध 'परमात्मा' हैं।

दोषों के त्याग से मुक्ति होती है

मूढत्तय सल्लत्तय, दोसत्तय - दंड - गारवत्तयेहि।
परिमुक्को जोइ सो, सिवगइ-पहणायगो होदि।।१४२।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **जोई**–योगी, **मूढत्तय**–तीन मूढ़ताओं, **सल्लत्तय**–तीन शल्यों, **दोसत्तय**–तीन दोषों, **दंड गारवत्तयेहि**–तीन दण्डों और तीन गारवों से, **परिमुक्को**–परिमुक्त/रहित होता है, **सो**–वह, **सिवगइपहणायगो**–शिवगति के मार्ग का नायक, **होदि**–होता है।

अर्थ–जो योगी तीन मूढ़ताओं, तीन शल्यों, तीन दोषों, तीन दण्डों और तीन गारवों से रहित होता है, वह मोक्षमार्ग का नेता होता है।

आत्म-विशुद्धि से मुक्ति मिलती है

रयणत्तय - करणत्तय - जोगत्तय - विसुद्धेहिं।
संजुत्तो जोई सो, सिवगइ-पहणायगो होदि।।१४३।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **जोई**–योगी, **रयणत्तय**–रत्नत्रय, **करणत्तय**–तीन करणों, **जोगत्तय**–तीन योगों, **गुत्तित्तय विसुद्धेहिं**–तीन गुप्तियों की विशुद्धि से, **संजुत्तो**–संयुक्त है, **सो**–वह, **सिवगइ पहणायगो**–शिवगति के मार्ग का नायक, **होदि**–होता है।

अर्थ–जो योगी रत्नत्रय, तीन कणों, तीन योगों, तीन गुप्तियों की विशुद्धि से युक्त है, वह मोक्षमार्ग का नेता होता है।

वीतराग योगी को मुक्ति मिलती है

जिणलिंगहरो जोइ, विराय-सम्मत्त-संजुदो णाणी।
परमोवेक्खाइरियो, सिवगइ-पहणायगो होदि।।१४४।।

सान्वय अर्थ–जिणलिंगहरो–जिनमुद्रा का धारक, **विराय-सम्मत्तसंजुदो**–वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, **णाणी**–ज्ञानी और, **परमोवेक्खाइरियो**–परम उपेक्षा–वीतराग भाव का धारक ऐसा, **जोइ**–योगी,

सिवगइपहणायगो–मोक्षमार्ग का नेता, **होदि**–होता है।

अर्थ–जिनमुद्रा का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ज्ञानी और परम उपेक्षा (वीतराग भाव) का धारक–ऐसा योगी मोक्षमार्ग का नेता होता है।

शुद्धोपयोगी को मुक्ति मिलती है

बहिरब्भंतर-गंथ-विमुक्को सुद्धोपजोय-संजुत्तो।
मूलुत्तर-गुणपुण्णो, सिव गइ-पहणायगो होइ।।१४५।।

सान्वय अर्थ–बहिरब्भंतर–गंथ–विमुक्को–बाह्य–आभ्यन्तर परिग्रह से रहित, **सुद्धोपजोय–संजुत्तो**–शुद्धोपयोग से संयुक्त और, **मूलुत्तर–गुणपुण्णो**–मूल और उत्तर गुणों से युक्त योगी, **सिव गइ–पहणायगो**–शिवगति के मार्ग का नायक, **होइ**–होता है।

अर्थ–बाह्य–आभ्यन्तर परिग्रह से रहित, शुद्धोपयोग से संयुक्त और मूल एवं उत्तरगुणों से युक्त (योगी) मोक्षमार्ग का नेता होता है।

साधु सम्यक्त्व की साधना करता है

जं जाइ-जरा-मरणं, दुह-दुट्ठ-विसाहि-विसविणासयरं।
सिवसुहलाहं सम्मं, संभावइ सुणइ साहदे साहू।।१४६।।

सान्वय अर्थ–जं–जो, **सम्मं**–सम्यक्त्व, **जाइ–जरा–मरणं**–जन्म, जरा, मृत्यु, **दुह–दुट्ठ–विसाहि–विस–विणासयरं**–दु:खरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है, **सिवसुह–लाहं**–शिव–सुख का लाभ कराने वाला है, **साहू**– साधु, **संभावइ**–उसी की भावना करता है, **सुणइ**–उसी के बारे में सुनता है और, **साहदे**–उसी की साधना करता है।

अर्थ–जो सम्यक्त्व जन्म–जरा–मृत्यु और दु:खरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है और मोक्ष–सुख का लाभ कराने वाला है, साधु उसी की भावना करता है, उसी के बारे में सुनता है और उसी की साधना करता है।

परमात्मा सम्यक्त्व के कारण पूज्य है

किं बहुणा हो ! देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं।
पुज्जा परमप्पा जे, तं जाण पहाण-सम्मगुणं।।१४७।।

सान्वय अर्थ-हो-हे भव्य !, **बहुणा किं**-बहुत कहने से क्या लाभ है ? **जे**-जो, **परमप्पा**-परमात्मा, **देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिं-देहिं**-देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, गणधरेन्द्रों से, **पूज्जा**-पूजित हैं, **तं**-उनमें, **पहाणसम्मगुणं**-सम्यक्त्व गुण की प्रधानता, **जाण**-जानो।

अर्थ-अहो (भव्य) ! बहुत कहने से क्या लाभ है ? जो परमात्मा देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र और गणधरेन्द्रों से पूजित हैं, उनमें सम्यक्त्व गुण की प्रधानता जानो।

विशेष-सम्यक्त्व समान तीनों श्लोकों में जीव का अन्य कोई उपकारी नहीं है और मिथ्यात्व के समान अपकारी नहीं है अतः सम्यक्त्व की साधना करो।

पंचमकाल के उपशम सम्यक्त्व

उवसम्मइ सम्मत्तं, मिच्छत्तबलेणं पेल्लदे तस्स।
परिवट्टंति कसाया, अवसप्पिणी-कालदोसेण।।१४८।।

सान्वय अर्थ-अवसप्पिणी-कालदोसेण-अवसर्पिणीकाल के दोष से, **मिच्छत्तबलेणं**-मिथ्यात्व के उदय से, **तस्स**-जीवों का, **उवसम्मइ सम्मत्तं**-उपशम सम्यक्त्व, **पेल्लदे**-नष्ट हो जाता है, फिर, **कसाया**-कषायें, **परिवट्टंति**-पुनः उत्पन्न हो जाती है।

अर्थ-(इस) अवसर्पिणी काल-दोष से, मिथ्यात्व के प्रबल उदय से जीवों का उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता हें, (और फिर) कषायें उत्पन्न हो जाती हैं।

विशेष-उक्तं च- कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा,
श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनाऽनयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्व-लक्ष्मी,
प्रभुत्व शक्तेरपवाद हेतुः।।5।।यु. शा.।।

श्रावक की ५३ क्रियायें

गुण-वय-तव-सम-पडिमा-दाणं-जलगालणं-अणत्थमिदं।
दंसण-णण-चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया।।१४९।।

सान्वय अर्थ-गुण-8 मूलगुण, **वय**-12 अणुव्रत आदि व्रत, **तव**-12 तप, **सम**-समता, **पडिमा**-11 प्रतिमा, **दाणं**-4 प्रकार के दान, **जलगालणं**-जलगालन, **अणत्थमिदं**-सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना, **दंसण-णाण-चरित्तं**- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, **सावया**-श्रावक की, **तेवण्ण किरिया**-53 क्रियायें, **भणिदा**-कही गई हैं।

अर्थ-8 मूलगुण, 12 अणुव्रत, 12 तप, समता, 11 प्रतिमा, 4 प्रकार के दान, जलगालन, सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-ये श्रावक की 53 क्रियायें कही गई हैं।

विशेष-इनका विस्तार से कथन चरणानुयोग अन्य ग्रंथों में देखें।

ज्ञान मुक्ति का कारण है

णाणेण झाणसिद्धी, झाणादो सव्वकम्म-णिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा।।१५०।।

सान्वय अर्थ-णाणेण-ज्ञान से, **झाणसिद्धी**-ध्यान की सिद्धि होती है, **झाणादो**-ध्यान से, **सव्वकम्म-णिज्जरणं**-समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, **णिज्जरणफलं**-निर्जरा का फल, **मोक्खं**-मोक्ष है, **तदो**-अतः, **णाणब्भासं**-ज्ञानाभ्यास, **कुज्जा**-करना चाहिये।

अर्थ-ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अतः ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

ज्ञान-भावना से तप, संयम, वैराग्य होता है

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो।
सुदभावणेण तत्तिय, तम्हा सुदभावणं कुणह।।१५१।।

सान्वय अर्थ-कुसलस्स-कुशल व्यक्ति के, **तवो**-तप होता है, **णिवुणस्स**-निपुण व्यक्ति के, **संजमो**-संयम होता है, **समपरस्स**-समताभावी के, **वेरग्गो**-वैराग्य होता है और, **सुदभावणेण**-श्रुत की भावना से, **तत्तिय**-ये तीनों होते हैं, **तम्हा**-इसलिए, **सुदभावणं**-श्रुत की भावना, **कुणह**-करो।

अर्थ–कुशल व्यक्ति के तप होता है। निपुण व्यक्ति के संयम होता है। समताभावी के वैराग्य होता है। और श्रुत की भावना से ये तीनों होते हैं, इसलिए श्रुत की भावना करो।

मिथ्यात्व से संसार-परिभ्रमण है

कालमणंतं जीवो, मिच्छत्त-सरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहदि सम्मं, संसारब्भमण-पारंभो।।१५२।।

सान्वय अर्थ–जीवो–यह जीव, **मिच्छत्त–सरूवेण**–मिथ्यात्व–स्वरूप होने से, **अणंतं कालं**–अनन्तकाल से, **पंचसंसारे**–पंचपरावर्तन रूप संसार में, **हिंडदि**– भ्रमण कर रहा है, किन्तु, **सम्मं**–उसे सम्यक्त्व, **ण लहदि**–प्राप्त नहीं हुआ, अतः, **संसारब्भमण–पारंभो**–संसार–परिभ्रमण बना हुआ है।

अर्थ–जीव मिथ्यात्व–स्वरूप होने से अनन्तकाल से (अनादिकाल से) पंचपरावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव) रूप संसार में भ्रमण कर रहा है, किन्तु उसे सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ, अतः संसार–परिभ्रमण बना हुआ है।

विशेष–मिथ्यात्व एवं अनन्तानुन्धी कषाय ही अनंत संसार का कारण है, अतः इनका परित्याग करो।

सम्यग्दर्शन से सुख मिलता है

सम्मद्दंसण - सुद्धं, जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसण-सुद्धं, जाव ण लभदे हि ताव दुही।।१५३।।

सान्वय अर्थ–जाव दु–जब, **सुद्धं**–शुद्ध, **सम्मद्दंसण**–सम्यग्दर्शन, **लभदे**–प्राप्त कर लेता है, **ताव हि**–तभी, **सुही**–सुखी होता है, **जाव**–जब तक, **शुद्धं**–शुद्ध, **सम्मद्दंसण**–सम्यग्दर्शन, **ण लभदे**–प्राप्त नहीं कर लेता, **ताव हि**–तभी तक, **दुही**–दुःखी रहता है।

अर्थ–जब शुद्ध (निर्दोष) सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, (जीव) तभी सुखी होता है। जब तक शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक (जीव) दुःखी रहता है।

विशेष–सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे सुख का श्रद्धान व ज्ञान भी नहीं

होता, अतः प्राप्ति भी उसके बिना नहीं होती।

सम्यक्त्व है, तो सब सुख-रूप है

किं बहुणा वयणेण दु, सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोक्खेव जाणं खु।।१५४।।

सान्वय अर्थ–बहुणा वयणेण दु–बहुत कहने से, **किं**–क्या लाभ है ? **सम्मत्त विणा**–सम्यक्त्व के बिना, **सव्वं**–सब, **दुक्खेव**–दुःखरूप ही है, **सम्मत्तेण**– सम्यक्त्व से, **विजुत्तं**–संयुक्त, **सव्वं**–सब, **सोक्खेव**–सुखरूप ही है–यह, **खु**–निश्चय से, **जाणं**–जानो।

अर्थ–बहुत कहने से क्या लाभ है ? सम्यक्त्व के बिना सब दुःख रूप ही है (और) सम्यक्त्व से सब सुख रूप ही है–यह निश्चय से जानो।

विशेष–उक्त चं–न सम्यक्त्व समं किञ्चित् त्रैकाले त्रिजगसपि।
श्रेयोडश्रेयश्च त्यित्व समं नान्यत्तनूभृताम्।।34।।र.श्रा.।।

सम्यक्त्व-हीन ज्ञान और क्रिया संसार के कारण है

णिक्खेव-णय-पमाणं, सद्दालंकार-छंद-लहियाणं।
णाडय-पुराण-कम्मं, सम्म विणा दीहसंसारं।।१५५।।

सान्वय अर्थ–णिक्खेव–णय–पमाणं–निक्षेप, नय, प्रमाण, **सद्दालंकार**–शब्दालंकार, **छंद**–छन्द, **णाडय**–नाट्यशास्त्र, **पुराणे**– (प्रथमानुयोग) इनका ज्ञान, **लहियाणं**–प्राप्त किया, **कम्मं**–बाह्य क्रियायें कीं, किन्तु ये सब, **सम्म विणा**–सम्यक्त्व के बिना, **दीहसंसारं**–दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

अर्थ–निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालंकार, छन्द, नाट्यशास्त्र, पुराण इनका ज्ञान प्राप्त किया, बाह्य क्रियायें कीं, (किन्तु ये सब) सम्यक्त्व के बिना दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

जब तक ममकार है, तब तक सुख नहीं

वसदि-पडिमोवयरणे, गणगच्छे समय-संघ-जाइ-कुले।
सिस्स-पडिसिस्सछत्ते, सुदजादे कप्पडे पुत्थे।।१५६।।

पिच्छे-संथरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं।
जावच्च अट्टरुद्दं, ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं।।१५७।।

सान्वय अर्थ-वसदि-वसति, **पडिमोवयरणे**-प्रतिमोपकरण, **गणगच्छे**-गण-गच्छ, **समय-संघ-जाइ-कुले**-शास्त्र, संघ, जाति, कुल, **सिस्स-पडिसिस्सछत्ते**-शिष्य, प्रतिशिष्य, **सुदजादे**-पुत्र-पौत्र, **कप्पडे**-वस्त्र, **पुत्थे**-पुस्तक, **पिच्छे**-पिच्छी, **संथरणे**-संस्तर और, **इच्छासु**-इच्छाओं में, **लोहेण**-लोभ से, **ममयारं**-ममकार, **कुणइ**-करता है और, **जावच्च**-जब तक, **अट्टरुद्दं**-आर्त्त-रौद्रध्यान है, **ताव**-तब तक, **ण मुंचेदि**-मुक्त नहीं होता, **ण हु सोक्ख**-न ही सुख मिलता है।

अर्थ-वसति, प्रतिमोपकरण, गण, गच्छ, शास्त्र, संघ, जाति, कुल, शिष्य, प्रतिशिष्य, छात्र, पुत्र, पौत्र, वस्त्र (श्रुतपाहुड) पुस्तक, पिच्छी, संस्तर और इच्छाओं में (जब तक) लोभ से ममकार करता है और जब तक आर्त्त-रौद्र ध्यान है, तब तक मुक्त नहीं होता और न सुख मिलता है।

निर्मल आत्मा ही समय है

रयणत्तयमेव गणं, गच्छं गमणस्स मोक्ख-मग्गस्स।
संघो गुणसंघादो, समओ खलु णिम्मलो अप्पा।।१५८।।

सान्वय अर्थ-मोक्खमग्गस्स-मोक्ष-मार्ग में, **गमणस्स**-गमन करने वाले साधु का, **रयणत्तयमेव**-रत्नत्रय ही, **गणं**-गण है, **गच्छं**-गच्छ है, **गुणसंघादो**-गुण-समूह से, **संघो**-संघ है, **खलु**-निश्चय से, **णिम्मलो**-निर्मल, **अप्पा**-आत्मा, **समओ**-समय है।

अर्थ-मोक्षमार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण और गच्छ है, गुणों के संघ (समूह) से संघ है और निश्चय से निर्मल आत्मा ही 'समय' है।

विशेष-(साधु के लिए) निश्चय से रत्नत्रय से युक्त आत्मा ही ज्ञान है, दर्शन है, तप है, संयम है, संघ है आत्मा ही मोक्ष मार्ग है।

सम्यक्त्व कर्मों का नाश करता है

मिहिरो महंधयारं, मरुदो मेहं महावणं दाहो।
बज्जो गिरिं जहा विणसिज्जदि सम्मं तहा कम्मं।।१५९।।

सान्वय अर्थ–जहा–जैसे, **मिहिरो**–सूर्य, **महंधयारं**–गहन अन्धकार को, **मरुदो**–वायु, **मेहं**–मेघ को, **दाहो**–अग्नि, **महावणं**–विशाल वन को और, **बज्जो**–वज्र, **गिरिं**–पर्वत को, **विणसिज्जदि**–नष्ट कर देता है, **तहा**–उसी प्रकार, **सम्मं**–सम्यक्त्व, **कम्मं**–कर्मों को नष्ट कर देता है।

अर्थ–जैसे सूर्य गहन अन्धकार को, वायु मेघ को, अग्नि विशाल वन को और वज्र पर्वत को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व कर्मों को नष्ट कर देता है।

विशेष–सम्यक्त्व रूपी सूर्य का अचिन्त्य ही प्रभाव है, क्योंकि जिसके प्रकट हो जाने पर करोड़ों सूर्यों से भी नष्ट न होने वाला मिथ्यात्व रूपी अंतरतम नष्ट हो जाता है।

सम्यक्त्व दीपक के समान है

मिच्छंयधार-रहिदं, हिय-मज्झं सम्म-रयण-दीव-कलावं।
जो पज्जलदि स दीसइ, सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं।।१६०।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **हियमज्झं**–अपने हृदय में, **मिच्छंधयार–रहिदं**–मिथ्यात्वरूपी अन्धकार से रहित, **सम्म–रयण–दीवकलावं**–सम्यक्त्व–रूपी रत्नदीप–समूह को, **पज्जलदि**–प्रज्वलित करता है, **स**–वह, **लोयत्तयं**–तीनों लोकों को, **सम्मं**–भली–भाँति, **दीसइ**–देखता है, **जिणद्दिट्ठं**–जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है।

अर्थ–जो अपने हृदय में मिथ्यात्व–रूपी अन्धकार से रहित सम्यक्त्वरूपी रत्नदीप–समूह को प्रज्वलित करता है, वह तीनों लोकों को सम्यक् प्रकार देखता है–ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

आत्मा के शुद्धस्वरूप का अभ्यास

पवयणसारब्भासं, परमप्पज्झाण - कारणं जाण।
कम्मक्खवण-णिमित्तं, कम्मक्खवणे हि मोक्खसुहं।।१६१।।

सान्वय अर्थ–पवयणसारब्भासं–प्रवचनसार/आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास, **परमप्पज्झाणकारणं**–परमात्मा के ध्यान का कारण है, **जाण**–ऐसा जानो, परमात्मा का ध्यान, **कम्मक्खवण–णिमित्तं**–कर्म–क्षय का कारण है और, **कम्मक्खवणे**–कर्म–क्षय होने पर, **हि**–निश्चय से, **मोक्खसुहं**–मोक्ष–सुख मिलता है।

अर्थ–आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण है, ऐसा जानो, (परमात्मा का ध्यान) कर्म–क्षय का कारण है और कर्म–क्षय होने पर निश्चय ही मोक्ष–सुख मिलता है।

धर्मध्यान से कर्मों का क्षय

धम्मज्झाणब्भासं, करेइ तिविहेण भावसुद्धेण।
परमप्पझाण-चेट्ठो तेणेव खवेदि कम्माणि।।१६२।।

सान्वय अर्थ–जो–जो, **तिविहेण**–मन–वचन–काय से, **भावसुद्धेण**–भाव की विशुद्धिपूर्वक, **धम्मज्झाणब्भासं**–धर्मध्यान का अभ्यास, **करेइ**–करता है–वह, **परमप्पझाण–चेट्ठो**–परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है, **तेणेव**–उसी से, **कम्माणि**–कर्मों का, **खवेदि**–नष्ट करता है।

अर्थ–(जो) मन, वचन, काय से भाव की विशुद्धिपूर्वक धर्मध्यान का अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है। उसी से (परमात्म–ध्यान की अवस्थिति से) वह कर्मों को नष्ट करता है।

काललब्धि का महत्त्व

अदिसोहण-जोगेणं, सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाइ-लद्धीए, अप्पा परमप्पओ हवदि।।१६३।।

सान्वय अर्थ–जह–जिस प्रकार, **अदिसोहण–जोगेण**–अतिशोधन–क्रिया के योग से (हमें) स्वर्ण, **सुद्धं**–शुद्ध, **हवेइ**–हो जाता है, **तह य**–उसी

प्रकार, **कालाइ-लद्धीए**-काललब्धि आदि के द्वारा, **अप्पा**-आत्मा, **परमप्पओ**-परमात्मा, **हवदि**-हो जाता है।

अर्थ-जिस प्रकार अतिशोध-क्रिया से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार काललब्धि आदि के द्वारा आत्मा परमात्मा हो जाता है।

विशेष-उक्तं च-

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइ संबंधो।
कणयोवले मले वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं।।2।।क.का.गो.।।

सम्यक्त्व यथेच्छ सुख देता है

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परसं।
लद्धो भुंजइ सोक्खं, जहच्छिदं जाण तह सम्मं।।१६४।।

सान्वय अर्थ-जिस प्रकार **कामदुहिं**-कामधेनु, **कप्पतरुं**-कल्पवृक्ष, **चिंतारयणं**-चिन्तामणि रत्न, **रसायणं**-रसायन, **परसं**-पारसमणि आदि को, **लद्धो**-प्राप्त करने वाला मनुष्य, **जहच्छिदं**-यथेच्छित, **सोक्खं**-सुख, **भुंजदि**-भोगता है, **तह**-उसी प्रकार, **सम्मं**-सम्यक्त्व को, **जाण**-जानो।

अर्थ-जैसे कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, रसायन और पारसमणि को प्राप्त करने वाला मनुष्य यथेच्छ सुख भोगता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व को जानो।

विशेष-किन्हीं 2 शास्त्रों में 'परसं' के स्थान पर ''परमं'' शब्द आया है जिसका अर्थ है उत्कृष्ट सुख।

'रयणसार' ग्रन्थ का माहात्म्य

सम्म णाणं वेरग्ग-तवोभावं णिरीहवित्ति-चारित्तं।
गुण-सील-सहावं तह उप्पज्जदि रयणसारमिणं।।१६५।।

सान्वय अर्थ-इणं रयणसारं-यह 'रयणसार' ग्रन्थ, **सम्म**-सम्यग्दर्शन, **णाणं**-ज्ञान, **वेरग्ग**-वैराग्य, **तवोभावं**-तपोभाव, **णिरीह वित्ति**-निरीहवृत्ति, **चारित्तं**-चारित्र, **तह**-तथा, **गुणीलसहावं**-गुण, शील और आत्मस्वभाव को, **उप्पज्जदि**-उत्पन्न करता है।

अर्थ–यह 'रयणसार' (ग्रन्थ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, तपोभाव, निरीहवृत्ति, चारित्र, गुण, शील और आत्मस्वभाव को उत्पन्न करता है।

विशेष–इस ग्रंथ का नाम ''रयणसार'' सार्थक ही है क्योंकि यह चेतना अनन्त गुणों को प्रकट करने का कारण है। अतः इसे ''रत्नसार'' कहना उचित ही है।

ग्रन्थ की प्रशस्ति

गंथमिणं जिणदिट्ठं, ण हु मण्णइ ण हु सुणेइ ण हु पढइ।
ण हु चिंतइ ण हु भावइ, सो चेव हवेइ कुद्दिट्ठी।।१६६।।

सान्वय अर्थ–जिणदिट्ठं–जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित, **इणं गंथ**–इस ग्रन्थ को, जो **ण हु मण्णइ**–न तो मानता है, **ण हु सुणेइ**–न सुनता है, **ण हु पढइ**–न पढ़ता है, **ण हु चिंतइ**–न चिंतन करता है, **ण हु भावइ**–न भावना करता है, **सो चेव**– वह व्यक्ति, **कुद्दिट्ठी**–मिथ्यादृष्टि, **हवेइ**–होता है।

अर्थ–जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित इस ग्रन्थ को जो न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिन्तन करता है और न भावना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

विशेष–सम्पूर्ण द्वादशांग को मानने वाला किसी एक अक्षर, पद वाक्य, का भी श्रद्धान नहीं करता है, तो भी वह मिथ्यादृष्टि ही कहलाता है, अतः सम्पूर्ण द्वादशांग की श्रद्धा व भावना करनी चाहिए।

उपसंहार

इदि सज्जणपुज्जं रयणसारगंथं णिरालसो णिच्चं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं ठाणं।।१६७।।

सान्वय अर्थ–इदि–इस प्रकार, **सज्जण–पुज्जं**–सज्जनों के द्वारा पूज्य, **रणसारगंथं**–रयणसार–ग्रन्थ को, **जो**–जो व्यक्ति, **णिरालसो**–आलस्य–रहित होकर, **णिच्चं**–सदा ही, **पढइ**–पढ़ता है, **सुणइ**–सुनता है, **भावइ**–भावना करता है, **सो**– वह, **सासयं ठाणं**–शाश्वत स्थान/मोक्ष, **पावइ**–पाता है।

अर्थ–इस प्रकार सज्जनों के द्वारा पूज्य इस 'रयणसार' ग्रन्थ को जो व्यक्ति आलस्य–रहित होकर सदा ही पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है, वह शाश्वत स्थान (मोक्ष) को पाता है।

शास्त्र दान करने वाले

पुण्यार्जक श्रावक

1. अनिल कुमार जैन (नेपाल) दिल्ली
2. डॉ. नीरज जैन, पश्चिम विहार, दिल्ली
3. रमेश चन्द गर्ग, सफदरजंग एनक्लेव, दिल्ली
4. ऋषभ जैन रोहिणी, दिल्ली
5. अनीता जैन, ग्रीन पार्क, दिल्ली
6. पी.के. जैन (कोसी वाले) दिल्ली
7. निकुंज जैन, जी.के.1, दिल्ली
8. राजीव जैन, (सी.आर. पार्क) दिल्ली
9. प्रवीन जैन (टोनी) ग्रीन पार्क, दिल्ली
10. सरवन कुमार जैन, ग्रीन पार्क, दिल्ली
11. मुकेश कुमार जैन, यमुना विहार, दिल्ली
12. मीनू जैन, कृष्णा नगर, दिल्ली
13. रश्मीकांत सोनी, जयपुर
14. आशुतोष जैन, कृष्णा नगर, दिल्ली
15. नवनीत जैन, यमुना विहार, दिल्ली
16. डॉ. अरुन कुमार जैन (यू.एस.ए.) रोहिणी, दिल्ली
17. योगेश जैन, मेरठ
18. अजय जैन, मेरठ
19. अक्षत जैन, मेरठ

20. राकेश जैन (रेस वाले) मेरठ
21. विपिन जैन (असोदा वाले) मेरठ
22. अंकुर जैन, अरिहंत ज्वैलर्स, मेरठ
23. अशोक जैन (हरड़ वाले) मेरठ
24. अशोक जैन, सरधाना, मेरठ
25. अशोक जैन (शाहबजाज) अजमेर
26. पूरन चन्द जैन, अजमेर
27. वीरेन्द्र जैन, (वाड़मेर वाले) अजमेर
28. राजेन्द्र जैन (केलवा वाले) अजमेर
29. पवन जैन (बदहारी) अजमेर
30. गौरव जैन, एटा
31. विनोद जैन (मिलेनियम) फिरोजाबाद
32. सोनू जैन (स्पोर्ट्स) फिरोजाबाद
33. महावीर जैन संदीप जैन, फिरोजाबाद
34. अनिल जैन, ग्वालियर
35. पवन चौधरी, अलवर
36. विजय जैन (प्रसीडेंट) अलवर
37. रमेश जैन, अलवर
38. घनश्याम जैन, अलवर
39. अशोक जैन, शास्त्री पार्क, अलवर
40. सुरेश जैन, अलवर
41. गुलाब चन्द जैन (गुलावली मसाला) अलवर

42. अरुन जैन, अलवर
43. एन. के. जैन, अलवर
44. दिलीप जैन, अलवर
45. पवन जैन (बहुच) अलवर
46. मनोज कुमार जैन, अलीगढ़
47. देवेन्द्र कुमार जैन (रामपुर वाले) नोएडा
48. अजय जैन, सेक्टर 61, नोएडा
49. अनिल जैन, सेक्टर 41, नोएडा
50. सचिन जैन (वैशाली) गाजियाबाद
51. दर्शन दयाल, हापुण
52. चन्द्रसेन जैन, पलवल
53. ओम प्रकाश जैन, कोसी
54. श्रीमती रजनी जैन, कामाँ
55. राकेश कुमार जैन, कमला नगर, मेरठ
56. शीतल प्रसाद जैन, रोहिणी, दिल्ली
57. राकेश कुमार जैन, यमुना विहार, दिल्ली
58. सुरेश कुमार जैन, गौतम नगर, दिल्ली
59. विनोद कुमार जैन, इंदिरा कॉलोनी, फिरोजाबाद
60. लिपि जैन, नोएडा
61. अमित जैन, नोएडा
62. आदेश जैन, फिरोजाबाद

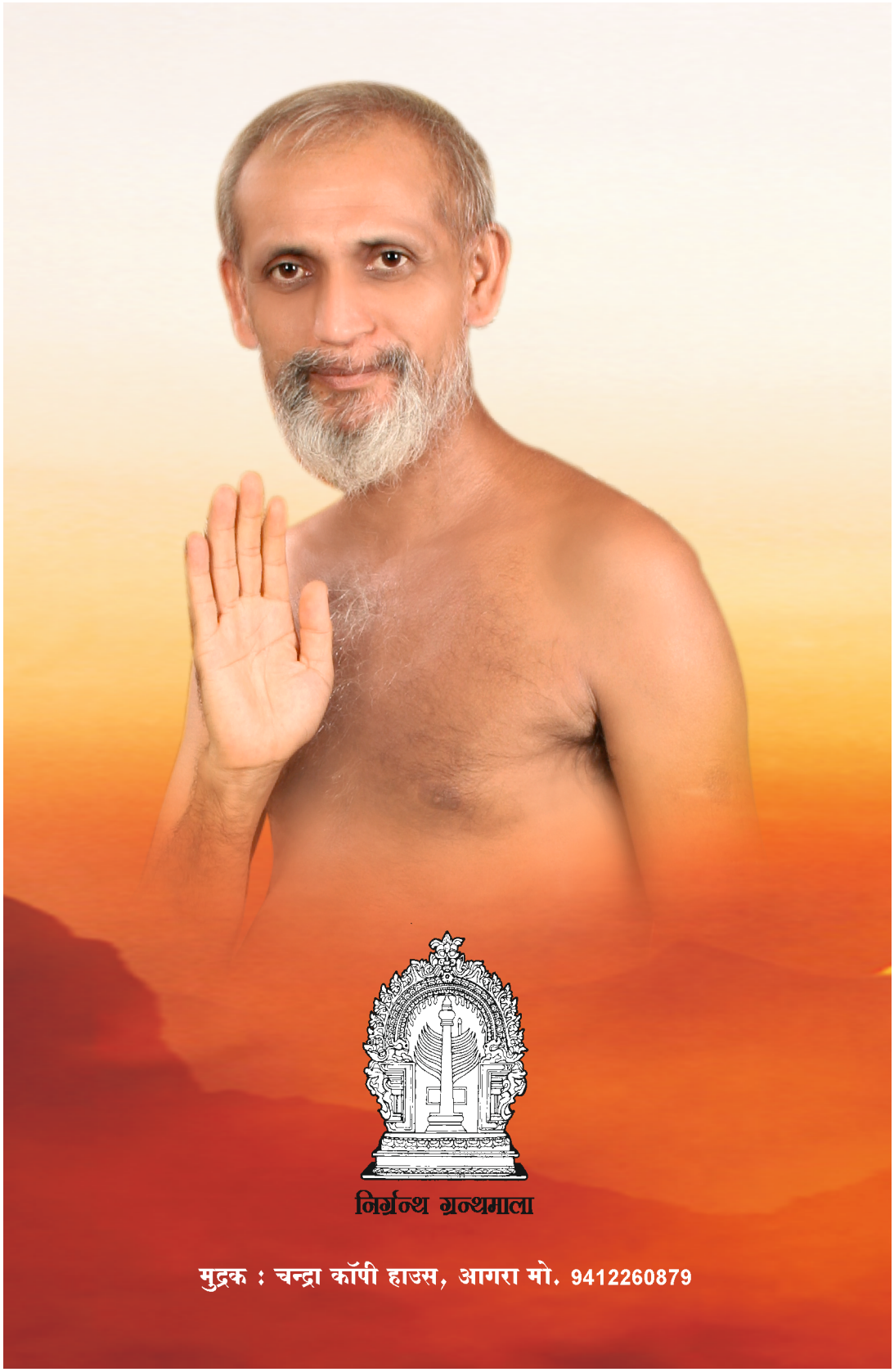

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

मुद्रक : चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा मो. 9412260879